कवि शमशेर का काव्यदर्शन और कला-संधान

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की
डी. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
(THESIS)

शोध निर्देशक :
प्रो. सत्य प्रकाश मिश्रा
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोध छात्र
अनिल कुमार सिंह
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

2002

भूमिका

अपनी गहरी संवेदना और कलात्मकता के कारण शमशेर की कविताएं प्रारंभ से ही मुझे आकर्षित करती रही हैं। भले ही उनका कुछ अर्थ समझ में न आता रहा हो, फिर भी वे हमारे संवेदनातंत्र को उद्वेलित करने में सफल होती रही हैं। यह तो बाद में समझ में आया कि शमशेर की कविताएं हमसे कुछ मांग भी करती हैं। जिस तरह संगीत को आत्मसात् करने के लिए हमें अपनी श्रवणेन्द्रियों को प्रशिक्षित करना पड़ता है उसी तरह शमशेर की कविताएं भी हमसे अपने अनुकूल प्रशिक्षण की मांग करती हैं। एक बार शमशेर के संवेदना संसार तथा कलात्मक विन्यास को जान लेने पर उनकी कविताओं को समझने में कठिनाई नहीं होती। वैसे भी उनकी कविताएं 'समझने' और 'समझाने' का उपक्रम कम ही करती हैं। इससे उनकी 'गम्भीर, प्रयत्नसाध्य पवित्रता' में खलल पड़ता है। वे तो सिर्फ़ अनुभूत करने के लिए हैं। इसलिए कभी-कभी तो वे अर्थहीन सी भी हैं। अपनी अर्थहीनता की आभा में दमकती हुई और पाठक को अपने रंग में सरोबार करती हुई।

इसलिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शमशेर जी की कविताओं को पूर्ण रूप से 'समझ लेने' या 'समझा देने' का दावा नहीं किया गया है। वे किसी भी साँचे में फिट बैठने वाले कवि नहीं हैं। इसलिए इस शोध प्रबन्ध में उनके काव्य दर्शन और कलात्मक संधान को समझने की विनम्र कोशिश भी उसी प्रशिक्षण का एक हिस्सा भर है जिसकी मांग शमशेर की कविताएं हमसे करती हैं। शायद इसका कुछ प्रतिफल आगे चलकर मिले।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्रमुख रूप से शमशेर के कवि पक्ष पर ही विचार किया गया है। ख़ास तौर से कविता और कला सम्बन्धी उनके विचारों तथा कलात्मक संधान की विभिन्न प्रक्रियाओं पर। शमशेर प्रयोगशील कवि हैं। उनके द्वारा की गयी कला माध्यमों की जाँच

का भी एक पहलू है। बहुत ही सुन्दर गद्य उन्होंने लिखा है। गद्य पर शायद फिर कभी काम हो सके।

इस शोध प्रबन्ध के लेखन के दौरान मुझे अनेक विद्वानों, साहित्कारों की आत्मीयता और सहयोग मिला है। इसके लिए मैं उनका हार्दिक रूप से आभारी हूँ : स्व. श्री रमा प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी', डा. राजेन्द्र कुमार, श्री त्रिलोचन शास्त्री, श्रीमती प्रेमलता वर्मा, श्री शिवकुटीलाल वर्मा, श्री अमरकान्त, श्री शेखर जोशी, श्री मार्कण्डेय, श्री दूधनाथ सिंह, श्री अजय सिंह।

मैं अपने मित्रों का भी आभारी हूँ जिनके सहयोग और प्रोत्साहन के बिना मैं कुछ कर पाता इसमें संदेह है।

अपने गुरूदेव डा. सत्य प्रकाश जी के बारे में क्या कहूँ। उनके धैर्य की जितनी परीक्षा मैंने ली है इसे केवल मैं ही जानता हूँ। फिर भी उनकी अपेक्षाओं पर कहाँ खरा उतर पाया मैं? शायद मैं उनके शिष्यत्व का ही अधिकारी नहीं था। इसके बावजूद उनके स्नेह और प्रोत्साहन की छत्रछाया निरंतर मेरे ऊपर बनी रही है। आभार व्यक्त करने की हिमाक़त मैं नहीं करूँगा –

जान दी दी हुई उसी की थी।
हक तो है कि हक़ अदा न हुआ।

अनिल कुमार सिंह
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

इलाहाबाद

25.02.2002

अनुक्रम

अध्याय-1

शमशेर का जीवन और परिवेश

(क) भौतिक परिवेशः आर्थिक, राजनैतिक वातावरण आदि

(ख) साहित्यक, सांस्कृतिक परिवेश

शमशेर का जीवन और परिवेश

कवि शमशेर का जन्म 3 जनवरी 1911 को देहरादून में हुआ था। हलांकि उनकी जन्मतिथि को लेकर थोड़ा भ्रम की स्थिति है। उनकी कई किताबों में 13 जनवरी 1911 को उनकी जन्मतिथि दर्शाया गया है। किन्तु उनके पहले तथा दूसरे संग्रह तथा सर्वेश्वर और मलयज द्वारा उन पर संपादित किताब में यह तिथि 3 जनवरी है। डा. नरेन्द्र वशिष्ठ ने अपने शोध प्रबन्ध में उनकी जन्मतिथि 3 जनवरी माना है। सद्यः प्रकाशित शमशेर के छोटे भाई तेज बहादुर द्वारा लिखित उनकी जीवनी में यह तिथि 3 जनवरी है। डा. तेजबहादुर चौधरी ने इस बारे में कहा है "मैंने जो जन्मतिथि दी है वह उनके शिक्षा संस्थाओं के प्रमाण पत्रों से दी है जो कि 3 जनवरी 1911 है न कि 13 जनवरी 1911।"[1] शमशेर के पहले संग्रह के प्रकाशक जगत शंखधर से तथा मलयज से उनकी निकटता तथा उनके छोटे भाई डा. तेज बहादुर चौधरी के साक्ष्य पर यही प्रतीत होता है कि उनकी जन्मतिथि 3 जनवरी 1911 ही है न कि 13 जनवरी 1911। उनके पिता का नाम चौधरी तारीफ सिंह था । वे लोग जाट पंवार गोत्र के थे तथा ग्राम एलम, जिला मुजफ्फर नगर तहसील केराना के रहने वाले थे। चौधरी तारीफ सिंह कलेक्टरी में अहलमद के पद पर थे। वे सामाजिक व्यक्ति थे। उनके यहां लोगों का आना जाना होता रहता था। उस जमाने की पत्र-पत्रिकाएं माधुरी, दरोगा दफ्तर भी वे मंगाते थे। "जंग" नाम का अखबार भी कभी-कभी लाते थे। चंद्रकांता संतति, भूतनाथ आदि देवकीनन्दन खत्री की कृतियां उन्होंने कई बार पढ़ रखी थीं। उनकी एक और आदत थी कि अपने बच्चों को मजेदार कहानियां या प्रसंग सुनाया करते थे। सम्भवतः बचपन के यही वे प्रभाव रहे होगे जो आगे चलकर कवि शमशेर के साहित्यिक

जीवन व्यतीत करने के निर्णय में सहायक हुए होगें। चौधरी तारीफ सिंह की शेरो-शायरी में कोई रूचि नहीं थी। डा. तेजबहादुर की किताब से पता चलता है कि एक बार शेरों-शायरी के लिए उन्होंने शमशेर को डांटा भी था जिससे दुःखी होकर उन्होंने अपनी शायरी की कापी जला दी थी। हालांकि चौधरी तारीफ सिंह को इस पर पश्चाताप हुआ और उन्होंने फिर कभी शमशेर को इस बावत कुछ नहीं कहा। चौधरी तारीफ सिंह गंगा पुस्तक माला की पुस्तकें भी घर मंगाते थे। बकौल शमशेर निराला जी का "परिमल" सबसे पहले उन्होंने इसी पुस्तक माला में पढ़ा था। मतिराम से उनका परिचय भी इसी पुस्तक माला के जरिये हुआ था। कलकत्ता से प्रकाशित रामानंद चटर्जी सम्पादित "मार्डन रिव्यू" भी उनके घर आता था।

शमशेर की माता का नाम प्रभुदेई (घर में परमेश्वरी) था। वे देहरादून के प्रतिष्ठित यूनानी तथा मिसरानी हकीम मुंशी भूप सिंह की पुत्री थीं। वे एक धर्मपरायण तथा सुसंस्कृत महिला थीं। उन्हें पंजाबी गुरूमुखी तथा हिन्दी आती थी। शमशेर जी को हिन्दी का प्रथम अक्षर ज्ञान उन्होंने ही कराया था। वे नित्य भागवत का पाठ करती थीं। चौधरी तारीफ सिंह भी रामायण का नियमित पाठ करते थे। शमशेर जी ने स्वीकार किया है कि उनकी कविताओं में जो लीला, अवतार आदि वैष्णव शब्दावली आती है वह इसी प्रभाव के चलते है। शमशेर का अपनी माँ से बहुत लगाव था। वे सारा दिन छाया की तरह उनके पीछे लगे रहते थे। 1919 में शमशेर की माँ का आकस्मिक देहांत हो गया। उस समय शमशेर की उम्र आठ वर्ष थी। इस घटना का उनके ऊपर जर्बदस्त प्रभाव पड़ा। वे गुम-सुम रहने लगे। वे सहसा ही माँ की स्नेह छाया से वंचित हो गये थे। डा. तेज बहादुर चौधरी ने उनकी जीवनी में लिखा है "यहां से शुरू हुई

यह मनोदशा, जीवन में बारम्बार लाचारी, बेबसी और मन भरा रहने जैसे रहने पर, सभी तरफ से एक प्रकार से उपेक्षित-सा उन्होंने अपने को समझा। और इसी मनोदशा ने उन्हें उत्तरोत्तर भावुक, अपने आप में ही सिमटे रहने, अपने दुःख-सुख को स्वयं ही सहने के योग्य बनाने में योगदान दिया।[2] कुछ इसी मनःस्थिति में उन्होंने लिखा होगा -

छेड़ मत दिन को कि पर्दे चाक हैं
आह निकलेगी फकत इस साज से[3]

डा. तेजबहादुर चौधरी ने लिखा है कि "माँ के मरने के बाद एक कवि के हृदय को जितना मर्मस्पर्शी, भावुक, सरल, नेक-छलहीन, सत्यव्रती, सन्तोषी, मनजीती, परहितैषी, निर्धनता का कटु अनुभवी, विपुल वैभव सम्पदा का परित्यागी, सभी के सम्पर्क में रहते हुए भी अपने को पृथक रखने, समझने इत्यादि के जो भाव एक वास्तविक कवि में होने चाहिए, वे इनमें माँ के वियोग ने ही संस्कार के रूप में दिये। माँ को वे आखिर तक नहीं भुला पाए।"[4] माँ से इतने गहरे लगाव का ही परिणाम था कि चौधरी तारीफ सिंह के दूसरी शादी कर लेने पर शमशेर उन्हें अंत तक माफ नहीं कर पाए।

शमशेर के सबसे छोटे मामा लक्ष्मीचन्द थे। वे "फारेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट" में लैब असिस्टेण्ट के पद पर थे। बाद में उन्होंने जबलपुर गनकैरेज फैक्टरी में भी काम किया। लक्ष्मीचन्द जी को उर्दू शायरी से लगाव था। वे शेर भी कह लेते थे। 'तुम्हारा तूर पर जाना मगर नाबीना होना है', शमशेर की गजल का यह मिसरा उन्हीं का कहा हुआ है।लक्ष्मीचन्द जी को अंग्रेजी भी आती थी। जैसा कि नरेन्द्र वशिष्ठ ने अपनी शमशेर पर लिखी किताब में लिखा है

कि "बाबू लक्ष्मीचन्द जी ने "हेमलेट" नाटक के माध्यम से कम उम्र में ही शमशेर को अंग्रेजी कविता से परिचित करा दिया।"[5] शायद यही कारण रहा होगा कि शमशेर शुरूआती दौर में अंग्रेजी में कविता लिखते थे। बाबू लक्ष्मीचन्द जी शमशेर के इलाहाबाद प्रवास के दौरान भी उनकी मदत करते रहते थे। उनकी एक पुत्री "मुन्नी" थीं जिन पर शमशेर का अगाध वात्सल्य था। उनका नाम उन्होंने "उदिता" रखा था जो बाद में उनके संग्रह का नाम हुआ। शमशेर के कवि मन की बनावट पर बाबू लक्ष्मीचन्द जी का अवश्य प्रभाव रहा है।

शमशेर के चचेरे भाई विशम्भर सिंह पवार ने अपने एक लेख में बताया है कि गोण्डा में चौधरी तारीफ सिंह के यहां "खाना बनाने के लिए एक महराजिन व बरतन आदि साफ करने के लिए एक कहारिन भी थी जिन्हें हम सभी "डिल्लियाइन" के नाम से पुकारते थे। वह कुछ काले रंग की, नाटे कद की व आधी उम्र की मेहनती कहारिन थी। यह कभी-कभी देहाती व शहरी कहानियाँ व देवी-देवताओं की व भूत-प्रेत की कहानियाँ बड़े रोचक ढंग से सुनाया करती थीं। .... उनके भीतर के रचनाकार को डिल्लियाइन ने अवश्य प्रेरित किया होगा।[6] शमशेर की माँ की मृत्यु के बाद उसने बच्चों को अपनी छाया में ले लिया था। उस समय शमशेर की उम्र मात्र 8 साल तथा तेज सिंह की 7 साल उम्र थी। अपने इलाहाबाद प्रवास के दौरान शमशेर गोण्डा गये थे। "दिल्लियाइन" से उनकी विह्वल मुलाकात भी हुई थी।

"देहरादून" से मेरा रिश्ता गहरा रहा है। मेरा जन्म वहीं हुआ। बचपन का एक बड़ा हिस्सा वहां गुजरा .... शांत जगह थी। खूब हरीतिमा थी। देहरादून की अपनी एक स्वाभाविक लय थी।"7

शमशेर की प्रारम्भिक शिक्षा देहरादून में हुई थी। आठवीं जमात तक वे देहरादून में पढ़े थे। उस जमाने में उर्दू सरकारी जुबान थी। उर्दू को खास तवज्जोह दी जाती थी। पारिवारिक वातावरण भी उर्दू परस्त था। उर्दू के बड़े शायरों की पंक्तियाँ अक्सर कान में पड़ जाती थी। शमशेर ने शायद इसी प्रभाव के चलते छठीं-सातवीं जमात से ही गजल लिखना शुरू कर दिया था। उन्होंने स्वीकार भी किया है कि "हिन्दी का मैं पण्डित नहीं हूँ, मेरा कभी विषय भी नहीं रहा । हिन्दी से साबका मेरे शौक की वजह से था।"[8] देहरादून की प्राकृतिक सुषमा और उर्दू शायरी की पृष्ठभूमि शायद शमशेर की रूमानियत की ये भी वजहें है। हिन्दी कविता से उनकी छेड़छाड़, 8वीं, 9वीं जमात से शुरू होती है। देहरादून में शमशेर की प्रारम्भिक शिक्षा ईसाई मिशनरी में हुई थी। उनकी कविताओं में करूणा का जो विराट संसार है उसके सूत्र जरूर यहीं से जुड़े होगे। बाद में उनके पिता ने ईसाइयत के प्रभाव से बचाने के लिए उनका एडमिशन डी.ए.वी. कॉलेज में करा दिया था। वहां वे और उनके छोटे भाई तेज सिंह बोर्डिंग हाउस में रहते थे। शमशेर जी शुरू से ही शांत प्रकृति के थे। उन्हें खेलने-कूदने से ज्यादा पढ़ने में रूचि थी। उन दिनों उनको जो जेब खर्च मिलता था उसमें से पैसे बचाकर वे देहरादून की पुरानी किताबों की दुकान से किताबें खरीदा करते थे। गालिब, जफर, दाग, भारतेन्दु, इकबाल, शेक्सपियर आदि महान रचनाकारों की कृतियों से उनका परिचय इन्हीं दुकानों में हुआ था। माधुरी और सुधा की पुरानी प्रतियां यहीं से वे लाते थे। उनकी अध्ययनशीलता तथा एकांतप्रियता के चलते ही डी0ए0वी0 कॉलेज में इतिहास के अध्यापक और कवि हरिनारायण मिश्र का ध्यान उनकी ओर गया। शमशेर कविता भी करते हैं यह जानकर वे बहुत उत्साहित हुए और बाद के दिनों में उन्होंने शमशेर के अध्ययन और रचनाशीलता को प्रेरणा दी और हर प्रकार से उनकी मदत

की। मिश्र जी ने शमशेर का परिचय वहां के एक बंगाली अध्यापक श्री चटर्जी से करवाया जिनसे शमशेर को अंग्रेजी कविता का विस्तृत ज्ञान मिला। इन दोनों गुरूओं ने उन प्रारम्भिक दिनों में शमशेर को एक साहित्यिक वातावरण प्रदान कर उनके अन्दर के रचनाकार को निखरने का मौका दिया। शमशेर इनके योगदान को भूले नहीं थे और अक्सर उनको कृतज्ञतापूर्वक याद करते थे। बाद में जब गोडे से हाईस्कूल पास कर शमशेर पुनः इण्टर में पढ़ने देहरादून लौटे तब भी इन गुरूओं का स्नेह और प्रोत्साहन उन्हें मिलता रहा।

सन् 1928 में गोण्डा से शमशेर जी ने अपनी हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू कविता से उनका परिचय हो चुका था। गंगा पुस्तक माला के माध्यम से सबसे पहले निराला का परिमल पढ़ा था। निराला जी तभी से उनके प्रिय कवि बन गये। उन्हीं दिनों उन्होंने हिन्दी में "उन्नति", उर्दू में "माअराज', तथा अंग्रेजी में (Success) नाम से एक हस्तलिखित पत्रिका भी निकाली थी। इसके तीन-चार अंक निकाले थे। डा0 चौधरी को इसकी एक प्रति 1926 में मिल गयी थी। इसे उन्होंने जतन से संभाल कर रखा था। अब यह डा0 रंजना अरगड़े के पास सुरक्षित है।

सन् 1928 में ही चौधरी तारीफ सिंह ने अपना तबादला देहरादून करवा लिया। इस तरह शमशेर और उनके भाई तेजबहादुर का पुनः डी0ए0वी0 कॉलेज में प्रवेश हुआ। तब तक शमशेर का साहित्यिक अनुराग काफी बढ़ चुका था। वहाँ की लायब्रेरी में शमशेर जी ने अपना अध्ययन जारी रखा। इसी बीच चौधरी तारीफ सिंह का परिचय देहरादून के प्रतिष्ठित केमिस्ट "डा0 चन्दन सिंह एण्ड संस" के मालिक चौधरी शमशेर सिंह से हुआ। वे निःसन्तान थे अतः उन्होंने

अपनी भानजी धर्मवती को अपने पास रखकर उसका पालन-पोषण किया था। इन्हीं धर्मवती जी से शमशेर जी का विवाह 1929 में सम्पन्न हुआ। धर्मवती जी काफी सुसंस्कृत महिला थीं। वे पढ़ी-लिखी थीं। माँ की मृत्यु के बाद उनसे ही कवि को मानसिक संबल मिला। शमशेर की साहित्यिक गतिविधियां अब तक बढ़ चुकी थीं। कॉलेज में होने वाले मुशायरों, कवि-सम्मेलनों में वे अपनी रचनाएं पढ़ते थे। कविता के अलावा अन्य विषयों पर ध्यान न देने का नतीजा यह हुआ कि वे इण्टर में फेल हो गये। उन दिनों की याद करते हुए उन्होंने बताया है" .... उन दिनों गद्य के बजाय पद्य में सभी विषयों के प्रश्नों के उत्तर देना मुझे ज्यादा आसान दिखता था।"9 अगले साल 1931 में उन्होंने गोण्डा से इण्टर पास किया। आगे की पढ़ाई के लिए वे इलाहाबाद आ गये।

इलाहाबाद में उनके उस समय के सहपाठियों में नरेन्द्र शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, वीरेश्वर सिंह प्रमुख थे। उस जमाने में इलाहाबाद की हैसियत कुछ साहित्यिक तीर्थ जैसी थी। छायावाद के तीन प्रमुख स्तम्भ निराला, पन्त और महादेवी वर्मा की सक्रिय उपस्थिति में शहर का साहित्यिक वातावरण जीवंत था। इन कवियों का सानिध्य भी शमशेर को मिला। निराला और पंत का अपने पर प्रभाव वे खुद स्वीकार करते थे। पंत की कविता की चित्रात्मकता और प्रकृति तथा निराला की प्रयोगधर्मिता का उन पर सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ा। इलाहाबाद में शमशेर जी हिन्दू बोर्डिंग हाउस कमरा नं0 127 में रहते थे। हर पूर्णिमा को वहां काव्य गोष्ठी जमती थी। पंत जी के सभापतित्व में एक बार छात्रावास में काव्य प्रतियोगिता का आयोजन भी हुआ था। शमशेर की कविता "कवि-कला का फूल हूँ मैं" को प्रथम पुरस्कार मिला था। इन्हीं दिनों शमशेर

ने अपने अध्ययन क्षेत्र का विस्तार किया। छायावादी कवियों के साथ अंग्रेजी के टेनीसन, शैली, रोजेटी तथा उर्दू के इकबाल, हाली, फानी तथा टैगोर का उन्होंने अध्ययन किया। शमशेर की प्रारम्भिक कविताओं पर छायावादी शैली का स्पष्ट प्रभाव दीखता है। सन् 1933 में शमशेर जी ने बी0ए0 पास किया। 1934 में उन्होंने बी0ए0 (आनर्स), अंग्रेजी में दाखिला लिया। इलियट, कमिंग्स तथा एजरा पाउंड की कविताएं पढ़ने को मिलीं पर आवश्यक हाजिरी के अभाव में उन्हें परीक्षा छोड़नी पड़ी। बी0ए0 करते हुए उन्होंने अपनी अंग्रेजी में लिखी कविताओं का एक संकलन भी तैयार किया था। पर इसका प्रकाशन सम्भव न हो सका।

इन्हीं दिनों उनकी पत्नी धर्मवती जी क्षयरोग से ग्रस्त हो गयीं। शमशेर जी के श्वसुर चौधरी शमशेर सिंह का मानना था कि उनको किसी पहाड़ी सेनेटोरियम में भर्ती करा दिया जाय। अतः शमशेर जी उनको लेकर इलाज के लिए शिमला चले गये। गढ़खल के एक सेनेटोरियम में धर्मवती जी को भर्ती करा के शमशेर जी उनकी सेवा में लग गये। किन्तु धर्मवती जी का क्षयरोग काफी बढ़ चुका था। उन दिनों टी0वी0 के इलाज की कोई अच्छी दवा न थी। अन्ततः 1935 में धर्मवती का देहान्त हो गया। इस घटना का शमशेर जी पर गहरा प्रभाव पड़ा। धर्मवती जी की मृत्यु के बाद शमशेर का मन पढ़ाई से उचट गया। इसी बीच उनके पिताजी उन पर दूसरी शादी करने के लिए दबाव डालने लगे। पत्नी की मृत्यु का आघात अभी ताजा था। शमशेर ने कड़ाई से विरोध किया। इस पर चौधरी तारीफ सिंह ने उन्हें बुरा-भला कहा। इन बातों से शमशेर जी नाराज होकर दिल्ली चले गये और खानाबदोशी का जीवन व्यतीत करने लगे। 1935 में ही उन्होंने दिल्ली में चित्रकला सीखने के लिए शारदा उकील कॉलेज ज्वाइन कर लिया।

बंगाल स्कूल की नींव शारदा चन्द्र उकील ने ही डाली थी। कॉलेज में वही मुख्य चित्रकार थे। विधिवत चित्रकार बनने की इच्छा शमशेर जी में शुरू से ही थी। उकील बन्धुओं से पेंटिंग सीखने लगे। साइनबोर्ड पेंटिंग से वे फीस और खाने के पैसे जुटाते थे। जीविका का कोई साधन न होने से उनका यह दिल्ली प्रवास काफी कष्टदायक सिद्ध हुआ। उन्हीं दिनों अपने भाई तेज सिंह के नाम एक पत्र में उन्होनें लिखा"[9] मैंने घर छोड़ दिया और अपनी किस्मत लेके दिल्ली आ गया हूं।....अब मेरे लिए जोजा (धर्मपत्नी) माँ, बहन, भाई, बाप, यार-दोस्त जो भी हैं वह बस अदब ही है, उसी के लिए अब जीना-मरना है, साहित्य की राह से अब डिगना नहीं है.....। मेरे पास अब केवल चार दिनों के लायक, चावल, दाल, आटा, कोयले रह गये हैं। पैसे लगभग समाप्त हो चुके हैं, अगर जल्द प्रबन्ध नहीं हो सका तो भूखे रहने की नौबत आ सकती है, तुम्हारी भाभी के कुछ जेवर तुम्हारे पास हैं। उसमें से दो-एक बेचकर मुझे कुछ रकम जल्दी भेज देना, मैं प्रतीक्षा करूंगा।"[10] जाहिर है कि जेवर बेचकर दिल्ली में अधिक समय तक गुजर नहीं हो सकती थी। इसी बीच देहरादून में उकील बन्धुओं के कला विद्यालय की शाखा खुलने पर शमशेर 1936 में देहरादून लौट आए तथा अपनी कला साधना जारी रखा। देहरादून में वे पेंटिंग सीखने के साथ अपने श्वसुर की केमिस्ट की दुकान पर कम्पाउण्डरी भी करते रहे।

1936 के अन्त में हरिवंशराय बच्चन देहरादून गये। इलाहाबाद में अध्ययन के दौरान शमशेर उनके सम्पर्क में भी आये थे। बच्चन जी ने देखा कि एक अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि घुट-घुट कर खत्म हो रहा है। बच्चन ने लिखा है "हुश्न-ओ-इश्क, शेर-ओ-शायरी का शैदा शमशेर पुलटिस बना रहा है। उसी वक्त मेरे दिमाग में यह बात उठी थी- इस हालत से तो इसको

निकालना चाहिए-इस हालत से तो इसको निकलना होगा।"[11] उस समय बच्चन की भी पहली पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी। दोनों में आपसी सहानुभूति स्वाभाविक थी। बच्चन ने अपने देहरादून प्रवास में शमशेर को इस बात के लिए राजी किया कि वे इलाहाबाद जाकर एम0ए0 करें। बच्चन जी की प्रेरणा से शमशेर 1937 में इलाहाबाद पहुँचे। वहां उनकी फीस का बच्चन और खाने का प्रबन्ध पन्त जी करते थे। 1938 में उन्होनें एम0ए0 (अंग्रेजी) प्रीवियस पास किया। किन्तु 1939 में वे आर्थिक दबावों के चलते एम0ए0 फाइनल की परीक्षा में न बैठ सके। एम0ए0 पूरा न करने का दूसरा कारण उन्होनें बताया कि "मैने तय कर लिया था कि सरकारी नौकरी नहीं करूंगा। उन दिनों राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था। देश पराधीन था। मैनें फैसला किया कि अंग्रेजों की नौकरी नहीं करूंगा। इसलिए ऐसी औपचारिक शिक्षा का महत्व मेरी नजरों में नहीं था।[12] 1939 में ही चौधरी तारीफ सिंह की मृत्यु हो गयी। धर्मवती जी की मृत्यु के पश्चात् चौथे वर्ष ही शमशेर जी के लिए यह एक और आघात था। 28 वर्ष की उम्र में यह तीसरी मृत्यु थी। शमशेर जी बिल्कुल अकेले हो गये।

1939 में ही शमशेर जी ने "रूपाभ" में कार्यालय सहायक के रूप में काम किया। "रूपाभ" का प्रकाशन बंद होने पर वे 1940 में बनारस चले गये और वहां से प्रकाशित "कहानी" पत्रिका में त्रिलोचन जी के साथ काम करने लगे। वहां वे त्रिलोचन जी के सहयोगी थे। त्रिलोचन जी उन दिनों की याद करते हुए कहते हैं "शमशेर और शिवदान सिंह चौहान दोनों एक साथ आये थे। मैं वहीं पहले से था, "कहानी" में।"[13] शिवदान सिंह चौहान उस समय सरस्वती प्रेस बनारस से प्रकाशित "हंस" पत्रिका का संपादन कर रहे थे। त्रिलोचन जी से शमशेर की

घनिष्ठता बहुत बढ़ गयी थी। त्रिलोचन संस्कृत के ज्ञाता थे किन्तु उनमें संस्कृत के पंडितों की शास्त्रीय रूढ़ता नहीं थी। इसे शमशेर जी पसंद करते थे और अक्सर मगन होकर त्रिलोचन से कहते थे कि "तुम रूढ़िमुक्त हो।"[14] डा0 रामविलास शर्मा भी बनारस आते रहते थे। त्रिलोचन, शिवदान सिंह चौहान, डॉ0 रामविलास शर्मा जैसे मित्रों के कारण शमशेर का झुकाव मार्क्सवाद की तरफ हुआ। बनारस में कुछ महीनों के लिए उन्होनें रामेश्वरी गर्ल्स कालेज में पढ़ाया भी था।

1942 में शमशेर जी अपने छोटे मामा लक्ष्मीचन्द जी के यहां जबलपुर गए। यहां रहते हुए शमशेर जी कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े और पार्टी की गतिविधियों में सक्रिय हिस्सेदारी की। जबलपुर में ठाकुर दादा, भागचंद जैन, और मुखर्जी उनके कामरेड मित्र हुआ करते थे। 1943 तक शमशेर जबलपुर में रहे। यहां उन्होनें अपनी अनेकों महत्वपूर्ण कविताएं लिखीं। इसी वर्ष 25 मई को सरस्वती प्रेस बनारस से "दोआब" का प्रकाशन हुआ था।

1944 में शमशेर कैंसरग्रस्त अपने श्वसुर के इलाज के लिए उनको लेकर मुम्बई गये। वहां निवास के दौरान उनका परिचय इप्टा की गतिविधियों से हुआ। वे उसके प्रभाव में आये। 1945 में शमशेर जी दुबारा बम्बई जा पहुँचे। वहां वे पार्टी कम्यून में रहते थे। यहीं उनका परिचय कैफी आजमी, सरदार जाफरी, पूर्णचन्द जोशी, नेमिचन्द्र जैन, रेखा जैन से हुआ। राजीव सक्सेना से उनका परिचय यूँ तो 1941 में बनारस के दिनों से ही था किन्तु यहां मैत्री प्रगाढ़ हुई। बम्बई के दिनों की याद करते हुए राजीव सक्सेना ने लिखा है "यूँ बम्बई में जब हम दोनों कम्युनिस्ट पार्टी के केन्द्रीय कार्यालय में काम करते थे (1945-47) तब कविता सम्बन्धी दृष्टिकोणों पर आपसी टकराव के कई मौके आए। वह अमरीकी कवि ई0ई0 कमिंग्स के बड़े

प्रशंसक थे जो अभिव्यक्ति लाघव के कौशल से हमें प्रभावित करते। मैं अमरीकी कवि वाल्ट ह्विटमैन का बड़ा प्रशंसक था जिनके रिहटोरिक में मुझे प्रगतिशील कविताधारा का भविष्य दिखाई देता था। इसके साथ ही हम लोग फ्रांसीसी कवि लुई अराँगा और पाल एलुअर, स्पेनी भाषा के पाब्लो नेरूदा तथा तुर्की के कवि नाजिम हिकमत की भी सराहना करते थे। ये कवि वामपंथी थे किन्तु उनमें से कुछ विशेषकर अरांगा और पाल एलुआर सुर्रियलिज्म के मंजे हुए कलाकार थे।

वास्तव में, यही वह पृष्ठभूमि थी जहाँ शमशेर जी का काव्यसौन्दर्य बोध विकसित हुआ और डा0 रामविलास शर्मा के जर्बदस्त "अगिया बैताल" दबाव के बावजूद शमशेर जी या मुक्तिबोध के काव्य-बोध की धारा बदली नहीं जा सकी।"[15] बम्बई में पार्टी कम्यून में रहते हुए "नया साहित्य" का संपादन किया था। 1946 में उनके संपादन में नया साहित्य का निराला अंक प्रकाशित हुआ था और खूब चर्चित हुआ था। बम्बई में पार्टी कम्यून के दिनों की याद करते हुए शमशेर जी ने "दूसरा सप्तक" के अपने आत्म परिचय में लिखा है "वहाँ कम्युनिस्ट पार्टी के संगठित जीवन में, अपने मन में अस्पष्ट से बने हुए सामाजिक आदर्शों का मैने बहुत सुन्दर सजीव रूप देखा। मेरी काव्य प्रतिभा ने उससे काफी लाभ उठाया।"[16] बम्बई में रहकर उन्होनें "बात बोलेगी", "माई", "घिर गया है समय का रथ", जैसी कविताएं लिखी। "माई" बम्बई में कम्युनिस्ट पार्टी के मुख्य कार्यालय में सबके खाने-पीने की व्यवस्था का काम करती थीं। वह काफी अनुशासन रखती थीं। शमशेर जी उसके बड़े प्रशंसक थे। 1946 में शमशेर जी के पार्टी कम्यून में रहते हुए ही कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर पर हमला हुआ था। इस हमले में शमशेर

जी भी घायल हुए थे। इस हमले के बारे में अजय सिंह से बात करते हुए शमशेर जी ने बताया था "द्वितीय विश्वयुद्ध का दौर था। उसमें कम्युनिस्ट पार्टी एक तरफ थी और फारवर्ड ब्लाक, सोशलिस्ट व कांग्रेस दूसरी तरफ थी। शाम को चौपाटी पर जनता की भीड़ को सम्बोधित करते हुए जलसे होते थे। जलसे के बाद लौटते हुए फारवर्ड ब्लाक वाले, सोशलिस्ट व कांग्रेसी रास्ते में कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर के पास हंगामा करते थे। कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता और हम लोग भी तैयार रहते थे। पार्टी के दफ्तर को जला देने, सदस्यों को जला देने की कोशिश होती थी। पर वे कामयाब न हो पाते थे। उसी में यह हमला हुआ था। कई लोग घायल हुए थे। हमला काफी बड़ा था। दूसरी बड़ी लड़ाई को कम्युनिस्ट पार्टी ने "लोकयुद्ध" घोषित कर रखा था, इस वजह से पार्टी से नाराजगी थी।"[17]

1947 में शमशेर जी पुनः इलाहाबाद वापस लौट आये और एलनगंज में मकान लेकर रहने लगे। कुछ महीनों की बेकारी के बाद 1948 में वे माया प्रेस में सहायक सम्पादक के रूप में नियुक्त हुए। किन्तु उनका नाम नहीं जाता था। उस समय "माया" के सम्पादक भैरव प्रसाद गुप्त थे। वे बहुत अनुशासन प्रिय थे। यहाँ शमशेर जी का हाल था कि कभी पहुँचे, कभी एकदम गायब। कभी एक ही कहानी पर दो दिन लगा दिया। अन्ततः जो होना था वही हुआ। 140 रू0 की नौकरी भी छोड़नी पड़ गयी। 1952 में उनकी कविताएं "दूसरा सप्तक" में संकलित हुई थीं। 1954 तक शमशेर जी ने माया प्रेस की नौकरी की थी। इस बीच वे "नया पथ" और "मनोहर कहानियां" में सम्पादन सहयोग भी करते रहे। एलनगंज के मकान में ही उन्होनें अपनी प्रसिद्ध कविता "अमन का राग" की रचना की थी। 1953 में शमशेर जी बहादुरगंज में "जस्टफिट

टेलर" वाले मकान में आए और 1964 तक वही उनका आवास रहा। यह घर उनके लिए जस्ट ही फिट था। बहादुरगंज का यह मकान संस्थान था जहां शमशेर जी ने जीवन के अनेकों रूप देखे। उन दिनों की याद करते हुए डा0 तेज बहादुर चौधरी ने लिखा है "जब मैं इलाहाबाद पहुँचा तो देखा, उस जस्टफिट मकान में घोर अभाव और अस्तव्यस्तता थी, खाने-पीने के नाम पर कुछ नहीं था, पता चला कि सभी काम भगवान भरोसे चल रहा है। भगवान भरोसे क्या कभी कोई कविता छप गयी तो कुछ मिल गया या कभी हमारे मामा जी ने कुछ सहायता कर दी........एक बार कपड़ों की इतनी कमी हो गयी कि मुझे भय्या ने लिखा कि दोनों कमीजें पीछे से फट चुकी हैं, तुम्हारी दी हुई अचकन ऊपर से पहन कर जाता हूँ।"[18] इतनी अस्तव्यस्तता के बावजूद उस घर में सबका स्वागत होता था। अनेक राजनीतिक, साहित्यिक सवालों पर बातें होती थीं। मुक्तिबोध, त्रिलोचन और अन्य साहित्यकारों का आगमन उस घर में होता रहता था। डा0 तेजबहादुर ने उनकी जीवनी में लिखा है कि "उस जस्टफिट आश्रम ने भय्या के स्वभाव एवं प्रकृति को इतना डिगा बना दिया था कि अब जमाने का कोई भी छोटा-बड़ा झटका इन्हें फिट नहीं सकता था, "वर्क की शाखों पे अपना आशियां तामीर है" अर्थात् बिजलियों की शाखों पर मेरा घर बना हुआ है, जो भी मुझे उड़ाने की हिम्मत करेगा वह स्वयं ही मिट जायेगा।"[19] इस घर में उनकी बहन मुन्नी भी कभी-कभी आया करती थीं। शमशेर जी का उन पर खास स्नेह था। जस्टफिट वाले मकान में रहते हुए शमशेर जी ने काफी चित्र भी बनाए थे। ये सभी रेखाचित्र और पेंटिंग जैसा भी कागज मिला उसी पर बनाए जाते थे। शमशेर जी जब जस्टफिट वाला मकान छोड़कर दिल्ली गये तो यह अमूल्य सामग्री वहीं छूट गयी। जस्टफिट वाले मकान में रहते हुए उनका मलयज के परिवार से घनिष्ठ सम्पर्क हुआ था। मलयज की बड़ी बहन प्रेमा उनसे

काफी घुली-मिली हुई थी। बाद में जब शमशेर जी 1965 में दिल्ली विश्वविद्यालय में यू0जी0सी0 के प्रोजेक्ट "उर्दू-हिन्दी कोश" के हिन्दी सम्पादक होकर दिल्ली गये तो मलयज का परिवार भी उनके साथ गया।

1959 में शमशेर जी की कविताओं का पहला संकलन "कुछ कविताएं" जगत शंखधर ने प्रकाशित किया। 1961 में उनका दूसरा कविता संकलन "कुछ और कविताएँ" राजकमल प्रकाशन से छपकर आया। 1962 की गर्मियों में कुछ दिनों के लिए शमशेर जी ने सारनाथ प्रवास किया था। यहीं पर उनका परिचय अमरीकी कवि एलेन गिन्सवर्ग से हुआ था। इस मुलाकात का जिक्र उन्होनें अपनी डायरी में किया है। 1964 में शमशेर मुक्तिबोध की बीमारी के सिलसिलें में "दिल्ली" आए। यहीं पर उन्होनें "चाँद का मुँह टेढ़ा है" की भूमिका लिखी थी। मुक्तिबोध उनके घनिष्ठ मित्रों में थे। 1948 में जबलपुर में शमशेर उनसे कई बार मिले थे। 1957 के इलाहाबाद वाले लेखक सम्मेलन में मुक्तिबोध आए थे। वे शमशेर जी के साथ जस्टफिट में ही ठहरे थे। उन्होनें अपनी लम्बी कविता "अंधेरे में" का पाठ भी किया था। 1961 में शमशेर मुक्तिबोध से मिलने राजनाँदगाँव भी गये थे। जस्टफिट टेलर्स वाले मकान में होने वाली गोष्ठियों की याद करते हुए हरिशंकर परसाई जी ने लिखा है, "बहादुरगंज के जस्टफिट टेलर्स" के ऊपर तीसरी मंजिल उनके कमरे पर कुल 5-6 लोगों की गोष्ठी होती थी जिसमें शमशेर जी के सिवा मुक्तिबोध, नरेश मेहता, प्रमोद वर्मा, मैं तथा एक-दो स्थानीय साहित्यकार होते थे। गोष्ठियां बहुत मजेदार होती थीं। यहाँ शमशेर खुलते थे। कविताएं भी सुनाते थे। मुक्त हँसी शमशेर हँसते थे। शमशेर में बहुत नफासत है। वे बहुत सुसंस्कृत हैं। अतिशय कोमल और नम्र हैं।"[20]

1965 से 1977 तक शमशेर जी दिल्ली विश्वविद्यालय में यू0जी0सी0 के प्रोजेक्ट "उर्दू-हिन्दी कोश" के सम्पादक रहे। दिल्ली में अपने शुरूआती दिनों में ये कुछ दिन डा0 प्रभाकर माचवे के यहाँ रहे थे। इसका जिक्र बाबा नागार्जुन ने अपने साक्षात्कार में इस तरह किया है "तो इलाहाबाद से जब दिल्ली आये वो, तो प्रेमलता भी आईं। मलयज भी दिल्ली आये। काम लगा तो शमशेर और प्रेमलता दो-चार दिन माचवे जी के यहां रहे।"[21] मलयज और उनका परिवार शमशेर जी के साथ दिल्ली गया था। बकौल नागार्जुन "अब चांस ऐसा हुआ कि माचवे जी ने पेरू के कल्चरल अटैची- डा0 तोला का सम्पर्क करा दिया इनसे कि हिन्दी सीखनी है तो इनसे सीखिए। प्रेमलता वर्मा से। तो वो रहता था मॉडल टाउन में ही। बड़ा मकान लिया था.......। तो उसी में दो रूम दे दिये। मलयज, प्रेमलता और सब उसी में शिफ्ट कर गये पूरा परिवार।"[22] इलाहाबाद में ही शमशेर जी का झुकाव प्रेमलता वर्मा की तरफ हुआ था। अपने जीवन के पचासवें वर्ष में शमशेर जी एक गहरे प्रेम में मुब्तिला थे। उन दिनों की याद करते हुए श्री दूधनाथ सिंह ने लिखा है "शमशेर ने उस लड़की की महत्वाकांक्षाओं को हवा देना शुरू किया। लेकिन गणित के आधार पर नाप-तोल कर नहीं। कहीं वे इतने सरल-सीधे और गहन रूप से भावुक आदमी थे कि वे ऐसा ही समझने लगे कि इस लड़की में गजब की प्रतिभा है। वह कविता की ऊंचाइयों तक आसानी से पहुँच सकती है।......तो शमशेर एक जोगी की तरह रम गये थे। पूर्णरूप से प्रेम में एक "होल-टाइमर"।[23] उन दिनों मलयज के घर अनेक साहित्यिकों का आना होता रहता था। अज्ञेय भी आते थे। जैसा कि श्री दूधनाथ सिंह ने लिखा है "जैसे-जैसे शमशेर हवा देने लगे, लड़की की महत्वाकांक्षाएं पेंग बढ़ाने लगी।.......एक बार भटक

खुल जाने के बाद उसका उच्छृंखल आत्मबल कई गुना बढ़ गया। उस घर में कवि लेखक तरह-तरह के बैक्टीरिया की तरह फैले हुए थे।.....अज्ञेय भी अक्सर आते थे। उनका आना एक उन्मादक उत्सव की तरह होता था। सो, वह लड़की फटाफट आगे बढ़ी और उसने बड़ी जल्दी ही उस सुवेष, सुघड़, चमकते, गौरवशाली कवि से प्रेम कर डाला। .....हम लोग अजीब पशोपेश में पड़ गये। यह क्या हो रहा है। वात्स्यायन इतने "छोटे" हैं। उन्हें अपने कविमित्र का भी ख्याल नहीं। मुझे शमशेर पर गुस्सा आता। क्या वे इतने असहाय हैं कि खत्म नहीं कर सकते। क्या वे डरते हैं कि फिर कभी प्रेम नहीं मिलेगा। लेकिन यह तो खुल्लम-खुल्ला अपमान है। ऐसे स्निग्ध और कोमल कवि को "हर्ट" करना है। क्या वे बिल्कुल "हर्ट" नहीं "फील" कर रहे हैं।.....शमशेर से क्या मिल सकता था। सिर्फ शब्द, सिर्फ ऊँचाइयाँ, सिर्फ अनन्त आकुल प्रेम, जो व्यक्त को भी अव्यक्त बना देता था। लेकिन अज्ञेय से प्रेम करना तो सामान्य घर से आयी हुई उस लड़की के लिए उपलब्धि थी।"[24]

लेकिन अज्ञेय को इस सारे काण्ड की कोई जानकारी नहीं थी। उन्हें जब पता चला तो उन्हें बहुत कोफ्त हुई। वे तुरन्त हट गये। किन्तु शमशेर जी यही सोचते थे कि उन्हें समझना चाहिए था। ऊपरी औपचारिकताओं के बावजूद कहीं बहुत भीतर से शमशेर ने भी अपने को प्रेमा से असंपृक्त कर लिया था। लेकिन वह खलिश बाकी थी। मलयज से बातचीत में इसे उन्होनें स्वीकार भी किया था जिसे उन्होनें अपनी डायरी में उधृत किया है" एक जिस व्यक्ति (प्रेमा) ने मेरी व्यक्तिगत समस्याओं में दिलचस्पी ली और उनको सुलझाने की कोशिश की, उसे मैंने भी इतना लिफ्ट ही नहीं दिया। बाद में जब जरा उसकी बातों को कुछ गम्भीरता से लेना चाहा तो

देर हो चुकी थी। कुछ समय बाद और भी देरी हो चुकी थी। फिर तब तक मेरी समस्याएं अपने-आप "रिजाल्वड" हो चुकी थीं।[25]

शमशेर जी की यह असंपृक्ति तब भी बरकरार रही जब प्रेमलता वर्मा ने डा0 तोला से शादी कर ली। शमशेर इस सारे कार्यक्रम के आयोजक-संयोजक-सभी कुछ थे। जैसा कि दूधनाथ जी ने लिखा है उन्होनें अपने सम्बन्ध को "मैत्री के संतुलन में बदल दिया। वे मुक्त होकर भी मुक्त नहीं हुए। जैसे कहीं कुछ हुआ ही न हो। ......भीतर ही धसकन बाहर कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती थी।"[26]

बहुत से तीर बहुत सी नावें बहुत से पर इधर
उड़ते हुए आए, घूमते हुए गुजर गए
मुझको लिए, सबके सब। तुमने समझा
कि उनमें तुम थे। नहीं, नहीं, नहीं।
उनमें कोई न था। सिर्फ बीती हुई
अनहोनी और होनी की उदास
रंगीनियाँ थीं। फकत।[27]

दिल्ली में शमशेर जी अपने पत्रकार मित्र अजय सिंह व शोभा जी के साथ काफी दिनों तक रहे। अजय सिंह ने एक बातचीत में बताया था "शमशेर से मेरा सम्पर्क 1969 में दिल्ली में हुआ। 1969 साल के आखिरी दिन। 1 जनवरी 1970 से हम लोग साथ रहने लगे लाजपतनगर में। जब मैं मिला था तब शमशेर डिफेंस कालोनी में रहते थे। वहां से शिफ्ट करने की तैयारी कर रहे थे। मैनें भी पैकिंग में हाथ बंटाया था। 31 दिसम्बर 1969 को शिफ्ट किया

था। 1 जनवरी 1969 से लेकर 1980-81 तक हम लोग बराबर साथ रहे। शुरू में दयानंद कालोनी लाजपतनगर और 1977 में हम लोग माडल टाउन में शिफ्ट कर गये थे।"[28] अजय जी ने बताया कि "शमशेर जी समय से लेट होने पर ओवरटाइम करके कम्पेनसेट करते थे। वे जब दिल्ली विश्वविद्यालय में "हिन्दी-उर्दू प्रोजेक्ट" पर काम करते थे अक्सर रात 9 बजे के बाद लौटते थे। उनमें आत्मसम्मान और स्वाभिमान गजब का था। कहीं भी दैन्य नहीं था।"[29] 1971 में जब शमशेर जी 60 वर्ष के हुए थे तब षष्ठमूर्ति मनायी गयी थी बड़े पैमाने पर। उसमें दिल्ली के जो भी कवि, लेखक, पत्रकार, संगीत, नृत्य की दुनिया से जुड़ेलोग थे सभी शामिल हुए थे। 1970 के बाद वाले दशक से उनके महत्व के आकलन का दौर शुरू होता है। लाजपतनगर में रहते हुए उन्होनें हिन्दी पाठकों को उर्दू सिखाने के लिए हर हफ्ते "उर्दू पाठमाला" दिनमान में लिखी। यह लगभग एक साल चला और पाठकों में बहुत लोकप्रिय हुआ था। दंगों पर "घर की पाती बसंता के नाम, "शोभा के लिए", "मोहन राकेश", "बैल", "अफ्रीका कम बैक" कविताएं वहीं लिखी थीं। अपनी पुरानी रचनाओं को ढूंढ़कर छपने-छपाने के लिए तैयार किया। इनमें से कुछ पाण्डुलिपियां खो भी गयीं। जैसा कि मलयज ने अपनी डायरी में लिखा है।"जब से इस बी-86 वाले मकान में शमशेर जी आए हैं, उनकी कई पाण्डुलिपियां खो गयी हैं। गोर्की के "आन लिटरेचर"का बहुत मेहनत से लगभग मूल के जैसा आनन्द देने वाला- किया हुआ अनुवाद, एक जापानी कहानी "कैनरी आईलैण्ड का अनुवाद और उनकी अंग्रेजी की लगभग 300 कविताओं की कापी गायब हो गयी। इस मकान में जब शुरू-शुरू में आये तब अजय सिंह के एक न एक नौजवान दोस्त आते रहते। कोई-कोई हफ्तों वहीं रहते भी थे। शमशेर जी कभी मूड में अपनी चीज वस्त्त बिखेर कर कोई चीज निकालते और उन लोगों को सुनाते।उन्हें शक है

कि उन्हीं में से किसी ने वे चीजे तिड़का दी हैं। उन्हें खो देने का मलाल वह ढो नहीं पाते।इसकी चर्चा पहले भी कईबार कर चुके है। ये सभी चीजे अप्रकाशित थीं। शमशेर जी अपनी चीजों को पहले नष्ट कर देते थे। प्रगतिवाद के उस दौर में रामविलास शमशेर की कविताओं के कटु आलोचक थे। शमशेर जी रामविलास की आलोचना से सहमत हो जाते और अपनी चीजों को रूग्ण और बेकार समझकर फाड़ डालते। इस तरह अपनी बहुत सारी चीजें उन्होनें नष्ट की हैं। फिर उन्होनें संकल्प किया कि अब वह अपनी चीजें नष्ट नहीं करेंगे।इस संकल्प का हाताशाऔर "डिप्रेशन" के कई दौरों के गुजरने केबाद भी उन्होनें पालनकिया।"[30]

1975 में राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली से उनके संग्रह चुका भी हूँ मैं नहीं" का प्रकाशन हुआ। 1977 में उन्हें इसी संग्रह पर साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा मध्यप्रदेश साहित्य परिषद का तुलसी पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इसी वर्ष शमशेर जी "उर्दू हिन्दी कोश" के प्रोजेक्ट से सेवानिवृत्त हुए थे। उन्होनें फैज की कविताओं का संपादन भी इन्हीं दिनों किया था जो राजकमल से छपा है।

1978 में शमशेर जी ने सोवियत संघ की यात्रा की थी। श्री सुरेश शर्मा ने लिखा है कि "वहाँ से लौटकर आए तो रूसी भाषा के प्रति गहरे अनुराग से भरे थे। उन्हीं दिनों एक दिन अचानक वे जे0एन0यू0 के रूसी भाषा केन्द्र में मिले। वे पता करने आए थे कि क्या उनकी उम्र का आदमी रूसी भाषा सीखने के लिए प्रथम वर्ष का छात्र हो सकता है।"[31]

1980 में "उदिता-अभिव्यक्ति का संघर्ष" का प्रकाशन दिल्ली के वाणी प्रकाशन से हुआ। इसमें शमशेर जी की प्रारम्भिक कविताएं संकलित हैं। इसी वर्ष राजकमल प्रकाशन से "इतने

पास अपने" संग्रह का भी प्रकाशन हुआ था। 1981 में संभावना प्रकाशन हापुड़ से '"बात बोलेगी" संग्रह का प्रकाशन हुआ। इसी वर्ष "चुका भी हूँ नहीं मैं" संग्रह का दूसरा संस्करण राधाकृष्ण प्रकाशन से छपा। 1981 में ही शमशेर जी को मध्यप्रदेश कला परिषद के अन्तर्गत स्थापित प्रेमचन्द सृजन पीठ उज्जैन का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। यहां वे 1985 तक रहे। प्रेमचन्द पीठ उज्जैन से सेवानिवृत्ति के पश्चात शमशेर जी डा0 रंजना अरगड़े जो उन पर शोध कर रही थीं के साथ सुरेन्द्रनगर गुजरात चले गये। दुर्भाग्य से इसी बीच उनका स्वास्थ्य खराब हो गया। अहमदाबाद सिविल अस्पताल में उनका इलाज चला। स्वास्थ्य लाभ के पश्चात वे डा0 रंजना के साथ सुरेन्द्रनगर में ही रहने लगे।

1987 में शमशेर जी को मध्यप्रदेश सरकार द्वारा स्थापित मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर भारत भवन भोपाल में उनकी पेंटिंग्स तथा उनके दस्तावेजों की प्रदर्शनी भी लगी थी। दूरदर्शन ने उन पर एक डाक्यूमेन्टरी भी बनायी थी।

1988 में शमशेर की कविताओं का संग्रहकाल तुझसे होड़ है मेरी" का प्रकाशन हुआ। इसका व्यापक स्वागत हुआ। इसी वर्ष उनके गद्य लेखन का संग्रह "कुछ गद्य रचनाएं" भी छपकर आया। इसमें "दोआब" के निबन्धों के संग्रह के साथ ही "प्लाट का मोर्चा", संग्रह की कहानियां तथा उनके लिखे स्केच और डायरी के अंश संकलित थे। 1989 में "कुछ और गद्य रचनाएं" का प्रकाशन हुआ। अब तक शमशेर समूचे भारतीय कविता संसार में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण हस्ताक्षर के रूप में अपना स्थान बना चुके थे। उनकी कविताओं को नए-नए पाठक मिल रहे थे। भारतीय कविता में उनके महत्व के आकलन का परिणाम था कि उनको 1989-90 के राष्ट्रीय

कबीर पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इस सम्मान की जूरी समिति में डा0 हरभजन सिंह, डा0 यू0आर0 अनन्तमूर्ति, श्री कुंवर नरायन, श्री कृष्ण खन्ना, श्री शंख घोष, श्री जयन्त महापात्र, श्री शमशुर रहमान फारूकी, डा0 सौभाग्य कुमार मिश्र, श्री विष्णु खरे जैसे विभिन्न भारतीय भाषाओं के लेखक और विद्वान शामिल थे। इस अवसर पर प्रकाशित पुस्तिका में शमशेर का परिचय देते हुए कहा गया था" श्री शमशेर बहादुर सिंह न केवल हिन्दी बल्कि समूचे भारतीय कविता संसार में एक शीर्ष स्थानीय कवि के रूप में समादृत हैं। भारतीय कविता में उन अग्रगामियों में से हैं जिन्होनें आज की कविता की भाषा और सम्वेदना दोनों के रूपाकार में बुनियादी और क्रान्तिकारी परिवर्तन किये हैं। अपनी परम्परा में गहरे रचे-बसे होने के साथ-साथ उन्होनें कविता को नया साहस, निर्भयता और खुलापन दिया। शमशेर जी के यहां परम्परा भारतीय परम्परा के सच्चे और पुनर्नवा चरित्र के अनुरूप एकीकृत नहीं बल्कि बहुल हैं। उसमें पूर्वी दृष्टि है, मध्यपूर्व के प्रभाव हैं और आधुनिक यूरोप की अनुगूंजे भी। शमशेर की भाषा में एक सच्ची भारतीय आत्मा अपनी पूरी उत्सुकता और ग्रहणशीलता के साथ अपने क्लैसिकी रूपों और रोमानी संगतों दोनों में ही चरितार्थ हुई है।"[32]

नवम्बर 1992 से जनवरी 1993 तक शमशेर जी वल्लभ विद्यानगर गुजरात में डा0 रंजना अरगड़े के साथ रहे। फरवरी 1993 में वे अहमदाबाद लौट आए। उनका स्वास्थ्य लगातार खराब होता जा रहा था। अन्ततः 12 मई 1993 को शमशेर जी ने देह त्याग दिया। यह एक युग की समाप्ति थी। आकाशगंगा की सर्वोच्च लहर अपने में विसर्जित दिये को अपने साथ ले गयी। शमशेर जी जानते थे कि ऐसा ही होना है। क्योंकि आकाशगंगा की सर्वोच्च लहर और

उसमें विसर्जित दीया उनके अपने भीतर थे। वह एक दरिया थे। उसमें उठने वाली लहरें भी स्वयं थे। उनके पार अनन्त था। उसे क्षितिज पर आसमान की तरह धारण करने वाले भी वे ही थे।

सर्वोच्च लहर

आकाशगंगा में

आकाशगंगा में

विसर्जित

एक दीया,[33]

संदर्भ :

1. मेरे बड़े भाई शमशेर जी, डा0 तेजबहादुर चौधरी, पृ0- 28
2. वही, पृ0 51
3. वही, उद्धरण, पृ0-51
4. वही
5. शमशेर की कविता, नरेन्द्र वसिष्ठ, पृ0-14
6. भूली बिसरी कुछ यादें, विश्वम्भर सिंह पवार, सापेक्ष, शमशेर अंक, पृ0- 217
7. शमशेर बहादुर सिंह से विनोद दास की बातचीत, अर्न्तदृष्टि-2, पृ0-5
8. शमशेर बहादुर सिंह से गोविन्द प्रसाद की बातचीत, आजकल, शमशेर अंक, पृ0-16
9. शमशेर बहादुर सिंह से विनोद दास की बातचीत, अर्न्तदृष्टि-2 पृ0-5
10. मेरे बड़े भाई शमशेर जी, डा0 तेजबहादुर चौधरी, उद्धरण, पृ0-153

11. नीड़ का निर्माण फिरः बच्चन, उद्धरण नरेन्द्र वशिष्ठ, शमशेर की कविता, पृ0-17

12. शमशेर बहादुर सिंह से विनोद दास की बातचीत, अर्न्तदृष्टि-2, पृ0-5

13. त्रिलोचन से रामकुमार कृषक की बातचीत, कल के लिए, शमशेर अंक, पृ0-63

14. वही

15. एक चित्रकार की दृष्टि और कालबोध से समृद्ध कविता, राजीव सक्सेना, सापेक्ष, शमशेर अंक, पृ0-205।

16. परिचय, दूसरा सप्तक, पृ0-84।

17. शमशेर से अजय सिंह की बातचीत, कल के लिए, शमशेर अंक, पृ0-69।

18. मेरे बड़े भाई शमशेर जी, डा0 तेजबहादुर चौधरी, पृ0-185

19. वही, पृ0-190

20 है काम ये शायर का नहीं दिल शमशेरः हरिशंकर परसाई, सापेक्ष, शमशेर अंक, पृ0- 195

21. बाबा नागार्जुन से रामकुमार कृषक की बातचीत, सापेक्ष, शमशेर अंक, पृ0-21

22. वही

23. लौट आ ओ धारः दूधनाथ सिंह, पृष्ठ

24. वही, पृष्ठ

25. मलयज की डायरी के पन्ने, 23 दिसम्बर 70, आजकल, शमशेर अंक, पृ0-52

26. लौट आ ओ धारः दूधनाथ सिंह, पृष्ठ

27. टूटी हुई, बिखरी हुई, कुछ और कविताएं, पृ0-135

28. अजय सिंह से बातचीत, लखनऊ

29. वही

30. मलयज की डायरी के पन्ने, 7 अप्रैल 1977, पृ0-54

31. कवि का जीवन, सुरेश शर्मा, विपाशा जुलाई-अगस्त 1993, पृ0-8

32. कबीर सम्मान के अवसर पर प्रकाशित पुस्तिका से, सापेक्ष, शमशेर अंक, पृ0-108

33. अंतिम कविता 13 जून 1992, गांधीनगर।

अध्याय-2

शमशेर का काव्यदर्शन

(क) कविता और कला सम्बन्धी शमशेर के विचार

(ख) भाव, विचार और कला की पारस्परिकता या अन्तर्सम्बन्ध

(ग) कविता और सामाजिक, राजनैतिक मूल्यः जीवन दृष्टि और विश्वदृष्टि

(घ) काव्य और विचारधारा के रिश्ते- शमशेर की नजर में

(ङ) सौंदर्य दृष्टि और कलात्मक अनुशासन

क- कविता और कला सम्बन्धी शमशेर के विचार :

''कविता में हम अपनी भावनाओं की सच्चाई खोजते हैं। उस खोज में उस सच्चाई का अपना खास रूप भी हमें मिलना ही चाहिए, जिस हद तक भी मुमकिन हो। क्योंकि किसी भी चीज का असली रूप उस चीज से अलग तो संभव नहीं।''[1]

शमशेर की कविता भावनाओं की सच्चाई की खोज की कविता है। वे अपनी निजी अनुभूति को बहुत ही महत्व देते हैं। वे अपनी कविता में वाह्य यथार्थ को अपनी निजी अनुभूति की कसौटी पर कसते हैं। यहां वे किसी प्रकार का समझौता नहीं कर सकते। मलयज ने उनके बारे में लिखा है ''शमशेर जी की सांसत और संघर्ष उस बाहर को अपना लेने को लेकर नहीं- आदर्श को सच कर देने को लेकर नहीं- बल्कि अपने भीतर को नष्ट न होने देने को लेकर है। वे बाहर को भी भीतर की ही शर्त पर चाहते हैं : क्योंकि भीतर ही तो उनका वह कला-विवेक निवास करता है जो उनको वाह्य मोर्चे पर हर शिकस्त में उन्हें टूटने-बिखरने नहीं देता।''[2] और शमशेर का यह कला-विवेक बहुत ही परिष्कृत और व्यापक है। उसमें दुनिया-जहान की चिंताएं हैं तो सौंदर्य की विलक्षण अभिव्यक्ति भी। लेकिन कहीं भी सरलीकरण नहीं है। अपनी काव्यात्मक ऊंचाई से वे कहीं नीचे उतरना नहीं चाहते। 'कुछ और कविताएं'' की भूमिका में शमशेर लिखते हैं ''कवि का कर्म अपनी भावनाओं में अपनी प्रेरणाओं में, अपने आन्तरिक संस्कारों में समाज सत्य के मर्म को ढालना- उसमें अपने को पाना है, और उस पाने को अपनी पूरी कलात्मक क्षमता से, पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त करना है, जहां तक वह कर सकता हो।''[3] यहां लगता है कि शमशेर के लिए ''काव्यानुभूति और जीवनानुभूति एक ही वस्तु है।''[4] शमशेर

का मानना है कि "सारे कवि- कलाकार- व्यक्तियों सहित, हम सब, समाज रूप से एक गतिशील इतिहास का अंग है।"[5] कवि-कलाकार चूँकि गतिशील इतिहास का अंग है अतः अपने सामाजिक परिवेश के साथ उनका जीवंत सम्बन्ध होता है। अपने परिवेश से कवि बहुत कुछ ग्रहण करता है और अपने काव्य-व्यक्तित्व के निर्माण में उसकी सहायता लेता है। समाज के अन्दर चलने वालीं गतिविधियां उसकी रचना-प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। यहां से वह अपने संस्कार ग्रहण करता है। कवि शमशेर ने हमेशा इस बात पर जोर दिया है कि कवि-कलाकार को अपनी काव्य-परम्परा की गहरी जानकारी तो होनी ही चाहिए साथ ही उसे लोककलाओं तथा लोक में चल रही अंतःक्रियाओं का भी सूक्ष्म ज्ञान होना चाहिए। इसके बिना उसकी वाणी में वह ओज और खरापन नहीं आ पायेगा जो किसी कवि को जनता का प्रामाणिक और सच्चा कवि बनाता है। आश्चर्य नहीं कि शमशेर के सबसे प्रिय कवि निराला हैं। निराला शमशेर के लिए सघनतम की आँख हैं। कवि जब भी भटकता है निराला ही पथ प्रदर्शन करते हैं। शमशेर जी का मानना है- "कलाकार के लिए सच्चे अर्थ में उबरने का एक ही रास्ता है, और वह यह कि वह पूरे समाज के जीवन में अपने-आपको मिला देः खो न दे, मिला दे। .... जहाँ-जहाँ भी कलाकार ने अपने जीवन में इस सामाजिकता को गहरा और सार्थक किया है, वहाँ-वहाँ उसको असाधारण शक्ति, मार्मिकता और गहराई मिली है।"[6]

शमशेर की महत्वाकांक्षा इस सामाजिकता के आदर्श को प्राप्त कर लेने की है। किन्तु उनके काव्य व्यक्तित्व की बनावट में कहीं कुछ ऐसा है जो उन्हें इस आदर्श को प्राप्त करने से रोकता है। शमशेर को इसका गहरा अहसास है "एक दौर था जब मैं ऐसी चीजें लिखने के लिए

अधिक उत्सुक था, उसके लिए अपने अन्दर काफी प्रेरणा महसूस करता था। पर अपेक्षित स्तर मुझे सदा अपने कवि-व्यक्तित्व की पहुंच से बहुत ऊँचा और असम्भव सा महसूस होता। फिर भी मैनें अपनी प्रेरणाओं को कुछ ऐतिहासिक सत्यों से जोड़ने की उनके धर्म को अपनी धड़कन के साथ व्यक्त करने की कोशिश की। ....फिर भी मैं यह दोहराकर कहना चाहूंगा कि जहां तक मेरी निजी उपलब्धि है, वहीं तक मैं उसे दूसरों के लिए भी, मूल्यवान समझता हूँ। अर्थात् कविता में सामाजिक अनुभूति काव्यपक्ष के अन्तर्गत ही महत्वपूर्ण हो सकती है।"[7]

काव्यपक्ष पर शमशेर का बहुत जोर है। अगर कविता भावनाओं की सच्चाई है तो उसकी अभिव्यक्ति पूरी कलात्मक क्षमता के साथ होनी चाहिए। तभी उसका कुछ महत्व होगा। वे जानते हैं कि "कविता शिल्प वैचित्र्य नहीं है, मगर इसमें सन्देह नहीं कि शिल्प और जीवन की अनुभूति यानि कला और काव्यवस्तु दोनों को पुष्ट, स्वस्थ और गहरा करने जाना ही निरन्तर.......एक समस्या है।"[8]

इस समस्या से वे अपने स्तर पर जूझते हैं और पाते हैं कि एक स्तर पर कथ्य और रूप में कोई भिन्नता नहीं रह जाती। इस अभिन्नता की प्राप्ति किसी भी बड़े कलाकार की उपलब्धि है। यह उसकी अभिव्यक्ति को एक क्लैसिकल सरलता प्रदान करती है। इस क्लासिकी सरलता को पाने की अभिलाषा हमेशा शमशेर में रही है। किन्तु "उनकी बनावट ऐसी है कि चीजों के प्रति वस्तुवादी रूख अपनाना न सिर्फ उनके बूते की बात नहीं, वरन् वैसा करने में उन्हें अपनी पराजय दीखती है। वह कुछ कुछ इसे अस्वाभाविक अप्राकृतिक भी मानते हैं और तिस पर मजा यह है कि वह अपना लक्ष्य हमेशा एक क्लासिकी वस्तुवादिता ही मानते हैं- वह जो भावनाओं के गंदले प्रवाह से दूर निर्मम स्फटिक सच्चाई की तरह पारदर्शी और शाश्वत नियमों की तरह व्यक्ति

निरपेक्ष हो।"[9]

शमशेर ने जहां इस वस्तुनिष्ठता को प्राप्त किया है वहां उनकी कविता भी उस क्लासिकी टोन को पाने में सफल रही है। सामाजिक-राजनैतिक विषयों पर लिखी उनकी कविताएं इसका उदाहरण हैं। उनकी राजनैतिक कविताएं घोषित रूप से प्रतिबद्ध कविता लिखने वालों की कविताओं से ज्यादा कारगर है और इन कविताओं को पाने के लिए शमशेर ने कहीं भी उनकी कलात्मकता को अनदेखा नहीं किया है।

'दूसरा सप्तक' के वक्तव्य में शमशेर ने लिखा था "सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल-छिन होता रहता है। अब यह हम पर है, खासतौर से कवियों पर, कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनन्त और अपार लीला को कितना अपने अन्दर घुला सकते हैं।"[10] किसी ने कहा है कि हिन्दी में विशुद्ध सौन्दर्य का कोई कवि हुआ है तो वह शमशेर हैं। शमशेर सौन्दर्य के माध्यम से ही जीवन के शुद्धतर मूल्यों का शोध करते हैं। उनका अपने आस-पास का निरीक्षण बहुत सूक्ष्म होता है। सामान्य चीजों में वे सौन्दर्य देख लेते हैं। उनका कला-विवेक यहां बहुत सक्रिय होता है। उनका मानना है कि सभी कलाएं अन्तरावलम्बित हैं। वे अपनी अभिव्यक्ति में सौष्ठव लाने के लिए विभिन्न ललित कलाओं का सहयोग लेते हैं। उनका मानना है कि सभी कलाओं का लक्ष्य अंततः एक है। दूसरे सप्तक के अपने वक्तव्य में उन्होनें लिखा है "तस्वीर, इमारत, मूर्ति, नाच, गाना और कविता- इन सबमें, बहुत कुछ एक ही बात अपने-अपने ढंग से खोलकर या छिपाकर या कुछ खोलकर कुछ छिपाकर कही जाती है। मगर इनके ये

अलग-अलग ढंग दरअसल एक-दूसरे से ऐसे अलग-अलग नहीं है, जैसे कि ऊपरी तौर पर लगते हैं।"[11] उनके इसी वक्तव्य को पढ़कर डा0 विजय देव नारायण साही निष्कर्ष निकालते है कि "सच तो यह है कि शमशेर की सारी कविताएं यदि शीर्षक हीन छपें, या उन सबका एक ही शीर्षक हो, "सौन्दर्य, शुद्ध सौन्दर्य' तो कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।"[12] किन्तु यह भी एक प्रकार का सरलीकरण है। शमशेर इस तरह के किसी सरलीकरण में विश्वास नहीं करते। 'दूसरा सप्तक' के वक्तव्य में ही उन्होनें लिखा है ".......अपने चारों तरफ की जिन्दगी में दिलचस्पी लेना, उस को ठीक-ठीक यानि वैज्ञानिक आधार पर (मेरे नजदीक यह वैज्ञानिक आधार मार्क्सवाद है) समझना और अनुभूति और अपने अनुभव को इसी समझ और जानकारी से सुलझा कर स्पष्ट करके, पुष्ट करके अपनी कला-भावना को जगाना यह आधार इस युग के हर सच्चे और ईमानदार कलाकार के लिए बेहद जरूरी है। इस तरह अपनी कला-चेतना को जगाना और उसकी मदद से जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को अपनी कला में सजीव से सजीव रूप देते जानाः इसी को मैं 'साधना' समझता हूँ और इसी में कलाकार का संघर्ष छिपा हुआ देखता हूँ। कला में भावनाओं की तराश-खराश, चमक, तेजी और गरमी सब उसी से पैदा होगी। उसी 'संघर्ष' और 'साधना' से जिसमें अन्तर-बाहर दोनों का मेल है।"[13] शमशेर सौन्दर्य का आविष्कार इस अन्तर-बाहर के मेल से करते हैं। तभी तो उनकी लम्बी उड़ानों की वायवीयता में भी हम जीवंत और माँसल सौन्दर्य का अनुभव कर पाते हैं। उनकी कला-दृष्टि से अमूर्त कविताओं में भी एक ऐन्द्रिकता का दर्शन करते हैं। ऐसा इसलिए संभव होता है क्योंकि शमशेर का मानना है "कला की अभिव्यक्ति व्यक्ति और समाज की आशाओं-आकांक्षाओं और क्षणिक समर्थताओं का एक

सजीव और गतिशील दर्पण हैं। इस दर्पण में हम अपनी शक्लें देखते नहीं पहचानते और समझते हैं।"[14]

शमशेर यूरोप के कला आन्दोलनों से भी प्रभावित रहे हैं। इंप्रेशनिज्म और सुर्रियलिज्म का प्रभाव उन्होनें स्वीकार किया है। मुक्तिबोध ने कहा था "शमशेर ने अपने हृदय में आसीन चित्रकार को पदच्युत कर, कवि को अधिष्ठित किया है।"[15] चित्रकला तथा कविता इन विधाओं का द्वन्द्व शमशेर की कविता में दिखाई देता है। मलयज से बातचीत में उन्होनें कहा था "पर मैंने अपनी चित्रकारी के शौक को कविता में काफी पूरा किया.....मैनें चीजों को अक्सर पेंटिंग की शक्ल में ग्रहण किया है, भले ही उनका कोई वाह्य रूपाकार न हो, रंग न हो, पर रंगों के प्रभाव उनमें हैं- रंगों के भावात्मक रूप। मेरे कविताओं में जो इंप्रेशिनिज्म की बात कही गयी है वह यही है- मैने मन पर पड़ने वाले प्रथम प्रभाव को ज्यों का त्यों यत्नपूर्वक शब्दों में ट्रांसफर करने की कोशिश की है।"[16]

इस दृष्टि से शमशेर अद्वितीय कवि हैं कि उन्होनें दो भिन्न विधाओं का अधिकतम सामंजस्य अपनी कविता में किया है। यूरोप के अतियथार्थवादी आन्दोलन का प्रभाव भी उन पर रहा है। संगमरमर का सा ठोस और ठंडा सौन्दर्य वह अपनी कविता में चाहते हैं। किन्तु यहां पहुंच कर उन्हें लगता है कि यहां तो सब-कुछ जड़ हो रहा है। वे जल्दी ही इससे हट जाते हैं। "प्रयोगवाद नर्वस ब्रेकडाउन का आर्ट है"[17] शायद इसी मनः स्थिति से यह निष्कर्ष निकला होगा।

अपनी कविता में शमशेर निरन्तर प्रयोग के हामी हैं। उनके लिए प्रयोग कोई वाद नहीं,

साध्य नहीं बल्कि साधन है। अपनी अभिव्यक्ति को निरन्तर विकसित और व्यापक बनाने के लिए वे प्रयोग करते हैं।

मलयज से बातचीत में शमशेर ने कहा था "कविता के माध्यम से मैनें प्यार करना, अधिक से अधिक चीजों को प्यार करना सीखा है। मैं उसके द्वारा सौन्दर्य तक पहुंचा हूँ। मेरी चेतना इतनी, कह लो कि कंडीशंड हो चुकी है, कि हर चीज में मुझे एक अंतःसौन्दर्य दिखाई देता है, बिना किसी अतिरिक्त कांशस प्रयत्न के, सौन्दर्य का पूरा एक कम्पोजीशन.....दृश्य जगत पहले मेरी नजर में सौन्दर्य के एक कम्पोजीशन के रूप में ही आता है....मैं उससे प्रभावित होता हूँ....काव्य की कुछ उपलब्धियाँ निगेटिव मूल्य के रूप में होती हैं, समझ लो कि यह बरबस सौन्दर्य के एक खाके में अपने को अनायास महसूस कर लेना मेरी कविता की यही निगेटिव उपलब्धि है।"[18] किन्तु यह शमशेर जी की विनम्रता है। इसका उदाहरण उनकी एक "बैल"कविता ही है जहां वे अपनी वस्तु तथा उसके अभिव्यक्ति लाघव से हमें चमत्कृत करते हैं। "बैल" पर किसने इतनी सुन्दर तथा प्रामाणिक कविता लिखी होगी?

संदर्भ :

1. दूसरा सप्तक : वक्तव्य, पृष्ठ 87।

2. बात बोलेगी, पर कब? मलयज, सापेक्ष, शमशेर अंक पृष्ठ 53।

3. भूमिका : कुछ और कविताएं, पृष्ठ 75।

4. शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट : बी0डी0एन0 साही, शमशेर- सम्पादक :

सर्वेश्वर, मलयज, पृष्ठ 27।

5. शमशेर के साथ थोड़ी-सी गप्पें : उद्धरण सोमदत्त, सापेक्ष, शमशेर अंक, पृष्ठ 38।

6. कला और साहित्य में प्रयोगवाद', कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 173

7. भूमिका : कुछ और कविताएं, पृष्ठ 76

8. शमशेर के साथ थोड़ी-सी गप्पें : उद्धरण, सोमदत्त, सापेक्ष, शमशेर अंक पृष्ठ 38

9. डायरी : मलयज 9 दिसम्बर, 1967, आजकल, शमशेर अंक

10. दूसरा सप्तक : वक्तव्य, पृष्ठ 87

11. वही

12. शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट : बी. डी. एन. साही, शमशेर-संपादक : सर्वेश्वर, मलयज, पृष्ठ 25

13. दूसरा सप्तक : वक्तव्य, पृष्ठ 87

14. अमूर्तकला, कुछ और गद्य रचनाएं पृष्ठ 165

15. शमशेर : मेरी दृष्टि में, मुक्तिबोध, शमशेर-संपादक : सर्वेश्वर, मलयज, पृष्ठ 12

16. बात बोलेगी, पर कब ? मलयज, सापेक्ष, शमशेर अंक, पृष्ठ 55

18. बात बोलेगी, पर कब ? मलयज, सापेक्ष, शमशेर अंक, पृष्ठ 49

ख. भाव, विचार और कला की पारस्परिकता या अंर्तसम्बन्ध

"केवल विचारधारा या केवल 'इमोशंस' के बल पर बड़ा काम नहीं किया जा सकता। इसके लिए गम्भीर तैयारी की जरूरत होती है।"[1]

शमशेर का मानना है कि एक कवि अपनी अभिव्यक्ति में सफल तभी हो सकेगा जब उसे अपने देश की काव्य परम्परा का गहरा ज्ञान होगा। इसके साथ ही उसे विश्व के महान काव्यों की जानकारी होनी चाहिए। इसी को वे 'गम्भीर' तैयारी कहते हैं। इस गंभीर तैयारी के अभाव में उनका मानना है कि "कवि जल्दी ही चुक जाते हैं और कविता लिखी जाते ही प्रायः निरर्थक हो जाती है।"[2] इससे जाहिर है कि कवि शमशेर कविता की रचना प्रक्रिया में भाव और विचार के साथ उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति को भी बराबर का वजन देते हैं। वस्तुतः उनकी दृष्टि में भाव, विचार और कला में परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इनमें से किसी एक के बिना बाकी दो का काम नहीं चल सकता। जिस प्रकार विचार के अभाव में किसी साहित्यिक कृति की कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार यह जरूरी नहीं कि हर प्रकार के विचार की अभिव्यक्ति साहित्यिक कृति में हो सकती है। यदि विचार झूठा हो तो साहित्यिक कृति की कलात्मक श्रेष्ठता अनिवार्यतः प्रभावित होगी। प्रसिद्ध रूसी विचारक प्लेखानोव के शब्दों में कहें तो "And when a false idea is made the basis of a literary work, it imparts to it inherent contradictions that inevitably detract from its aesthetic merit."[3]

विचारधारा का किसी कवि की रचना प्रक्रिया पर क्या प्रभाव पड़ता है इसे वे शील जी तथा धर्मवीर भारती के उदाहरण से समझाते हैं- "रचनाकार की विचारधारा का उसकी रचना

प्रक्रिया पर क्या असर पड़ता है, इसकी बड़ी दिलचस्प मिसाल शील की है। शील की प्रारम्भिक रचनाएं छायावादी भाषा-शैली में हैं, लेकिन मजदूरों के बीच रहने के कारण आन्दोलन की जरूरत के मुताबिक उन्होंने उसी छंद विधान या 'पैटर्न' को अंदर से बदला। उन्होंने गीत लिखे, मुक्त-छन्द नहीं।"[4] दूसरी तरफ डॉ. धर्मवीर भारती के बारे में वे लिखते हैं "उनके अंधायुग में उनके युवाकाल का आवेश है और वह आवेश पूरी शक्ति के साथ उसमें व्यक्त हुआ है, लेकिन वह सचेत रूप से प्रगतिवाद विरोधी ऐजेंडा लेकर लिखा गया है और मेरे देखते इस गलत दृष्टि या विचारधारा का प्रभाव उनकी रचना प्रक्रिया पर यह पड़ता है कि वे 'अंधायुग लिखने के बाद लगभग चुक जाते हैं।"[5]

शमशेर जानते हैं कि विचारधारा अगर किसी कलाकार की अभिव्यक्ति में मार्मिकता लाकर उसे प्रामाणिक बना सकती है तो दूसरी तरफ उसके कुछ खतरे भी हैं। उनका मानना है कि रचनाकार किसी आन्दोलन से दो तरह से जुड़ता है, एक केवल वैचारिक रूप से तथा दूसरे वैचारिक के साथ-साथ सामाजिक स्थिति या कर्म के स्तर पर। वे इस सामाजिक स्थिति या कर्म के स्तर को बहुत महत्व देते हैं क्योंकि उनका मानना है कि "अमल अनुभव की तीसरी आँख खोल देता है, जिसकी प्रखर रोशनी में अपनी कमजोरियां और बैरी-दुश्मन के मनसूबे सब जल जाते हैं। बशर्ते कि वह आँख खुली रहे- अमल के रास्ते की तरह, अबाध जनशक्ति की तरह। बन्द न हो क्योंकि अन्त में विजय तो उसी की है।"[6]

शमशेर पन्त जी के माध्यम से समझाते हैं कि वे प्रगतिशील आन्दोलन से केवल वैचारिक रूप से जुड़े, सामाजिक स्थिति या कर्म से नहीं, इसलिए उनकी कविताएं वक्तव्य के स्तर

पर ही रह गयीं। जबकि निराला घोषित रूप से प्रगतिशील आन्दोलन से न जुड़कर भी अपनी कविता में वह भाव ला सके। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि "केवल भावुक कल्पना के माध्यम से ही समाज के प्राणमय तत्वों से व्यक्ति का सम्बन्ध कैसे स्थापित हो सकता है? अपने चारों ओर के समाज की समस्याओं को अपनी समस्या बनाकर, उसके संघर्ष को अपना संघर्ष बनाकर ही तो हम उसके विविध गतिमय प्राणमय संचलित तत्वों को अपने अन्दर अनुभव कर सकेंगे।"[7]

निराला की सरलता इसी में है कि वे इन विविध गतिमय प्राणमय संचलित तत्वों को अपने अन्दर घुला ले गए थे। शमशेर का जोर इस बात पर है कि "हमें भावों का क्रियात्मक रूप पकड़ना है। मानव ट्रेजडी के गहन गह्वरों में सिर्फ इसलिए झाँकना है कि उनमें 'जीवन के संस्कार', 'भावी संस्कृति के उपादान', और 'मनुष्यत्व के मूलतत्व' मिल सकें, कि जिससे 'नव मानवता' का निर्माण हो सके।"[8]

इस 'नव मानवता' का निर्माण हम तभी कर पायेंगे जब हम अपने भावों को 'क्रियात्मक' रूप दे सकेंगे और अपने भावों को क्रियात्मक रूप देने के लिए जरूरी नहीं कि हम किसी दल या पार्टी से 'कमिटेड' ही हों। जो साहित्यकार "द्वन्द्वात्मक यथार्थ की सचेतन रूप से ग्रहण की जाने वाली जमीन- निरन्तर संघर्ष द्वारा अमल-दखल में लायी जाने वाली सामाजिक यथार्थ की यही बौद्धिक जमीन।"[9] पर अपने पांव जमाएगा वही अपनी रचनाओं में प्राण भर सकेगा। मुक्तिबोध इसीलिए उनको अपनी अभिव्यक्ति में सफल लगते हैं क्योंकि "उनके अन्दर मस्तिष्कहीन कोरी भावुकता नहीं है। उनके भावें के ज्वार के पीछे विचारों का दीर्घ दोहन है। वह युग के उस चेहरे की तलाश करते हैं जो आज के इतिहास के मलबे के नीचे दब गया है, अगर वह मरा

नहीं है। जिन अनुभूतियों को इस कड़ियल कवि ने झेला है उनमें लगातारज ीकर, उनकी अग्नि परीक्षा देकर वह आ खड़ा हुआ है जहां वह प्रत्येक संघर्षशील देश और जनता का अपना हो गया है।''[10]

यानि कि शमशेर केवल भावों को ही कविता के सृजन के लिए महत्वपूर्ण नहीं मानते बल्कि 'विचारों' के दीर्घ दोहन' पर भी बल देते हैं। किसी भी रचनाकार को अपना ठोस आधार विचारों की इसी आधार-भूमि पर मिलता है। केवल भावों के सहारे हम काव्य के वस्तु की ऊपरी सतह भले ही छू लें उसकी गहराई को नहीं नाप सकते। इसी तरह केवल विचारों की सहायता से हम जीवन के मर्म को नहीं जान सकते। इनमें संतुलन जरूरी है। शायद इसीलिए मुक्तिबोध उनके प्रिय कवि हैं ''क्योंकि वह मुझसे इतना भिन्न हैं। एब्स्ट्रैक्ट नहीं, ठोस। बहती हवाओं सा लिरिकल, अर्थहीन सा कोमल, न कुछ नहीं बल्कि प्रत्येक पंक्ति में चित्र केउभार को और भी घूरती और भी ताड़ती हुई आँख से प्रत्यक्ष करता हुआ। अनुभूति के यथार्थ से कतराता हुआ नहीं बल्कि अपने तर्क और भावना के कुशन से अनुभव की कड़ी धरती को लगातार गहरे खोदता जाता।''[11]

एक रचनाकार अपने समाज में उठने वाली तरंगों की, उनमें चलने वाले संघर्षों, उनके उत्सवों और शोक की जितनी गहरी पहचान रखेगा उतना ही उसकी काव्य-अभिव्यक्ति में मार्मिकता आयेगी। अंततः एक रचनाकार अपना खाद-पानी अपने समाज से ही ग्रहण करता है। समाज में चलने वाले संघर्षों से एक रचनाकार की जितनी गहरी संपृक्ति होगी वह उतना ही अपने अनुभव में प्रामाणिकता ला पायेगा। समाज से व्यापक संपृक्ति के चलते एक रचनाकार की''.....कविता

का फार्म ही नहीं बदलता, परम्परागत शब्दों के अर्थ तक बदल जाते हैं।"[12]

क्योंकि एक मौलिक रचनाकार की कोशिश रहती है और वह जानता है कि "काव्य वस्तु की वास्तविकता- ठोसपन, ठसपन नहीं- चाहे फिर वह वास्तविकता कितनी ही छोटी हो- मगर वास्तविकता जो कि दूसरे के दिल की मुट्ठी में कुछ-कुछ आ जाती हो।"[13]

संदर्भ

1. सामाजिक सत्य और रचना का माध्यम, कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 15
2. वही
3. आर्ट एण्ड सोशल लाइफ, सेलेक्टेड, फिलासोफिकल वर्क्स, प्लेखानोव, पृष्ठ 659
4. सामाजिक सत्य और रचना का माध्यम, कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 14
5. वही, पृठ 15
6. राष्ट्रीय बसंत की प्रथम कोकिला, दोआब, कुछ गद्य रचनाएं, पठ 44
7. सात आधुनिक हिन्दी कवि, दोआब, कुछ गद्य रचनाएं, पृष्ठ 85
8. ग्राम्या- एक परिचय, दोआब, कुछ गद्य रचनाएं, पृष्ठ 58
9. नामवर, कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 152
10. जीवन जो हारा नहीं खत्म हो गया, कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 143
11. भूमिका : चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृष्ठ 19
12. सामाजिक सत्य और रचना का माध्यम, कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 14
13. डायरी : शमशेर जनवरी 52, कुछ गद्य रचनाएं, पृष्ठ 272

ग. कविता और सामाजिक, राजनैतिक मूल्य ; जीवनदृष्टि और विश्वदृष्टि

"सामाजिक सम्बन्धों का जो सौन्दर्य और आकर्षण जीवन के अवरुद्ध द्वार खोलकर व्यक्ति की सब शक्तियों को मुक्त और उल्लासपूर्ण नहीं करता, एक खुली हँसी की चमक सी उसके अंग-अंग में नहीं भरता, वह एक बहुत गलत और बीमार चीज है।"[1]

"तमाम कला राजनीति है। यह एक अति परिचित और यथार्थ उक्ति है। जिस कला में राजनीति नहीं है, वह कला नहीं। बनार्ड शॉ और इब्सन के जमाने से लेकर ब्रेश्ट और आधुनिक इटली के अनेक विश्व विख्यात फिल्म-निर्देशक तक यही बात दुहराते आये हैं। कोरी राजनीति नहीं वह 'राजनीति' जिसमें आम आदमी की आशाएं- आकांक्षाएं सुलगती हैं। हर सच्चा कलाकार- देखा जाय, तो हर युग में- उसी अग्नि का ताप झेलता है।"[2]

कोई भी रचनाकार जिस समाज में रहता है उसके कुछ अपने सामाजिक, राजनैतिक मूल्य होते हैं। समाज ये मूल्य अपने अन्दर चलने वाली क्रिया-प्रतिक्रियाओं तथा संघर्षों की एक लम्बी श्रृंखला से अर्जित करता है। इनके पीछे एक सामूहिक दृष्टि (Collective vision) होता है। यह सामूहिक दृष्टि जनाकांक्षाओं के मेल से ही उपलब्ध होती है। इसमे एक जाति का अनुभव, उसके सुख-दुःख, उसकी आशाओं-आकांक्षाओं, उसके शोक तथा उत्सवों का प्रतिबिम्बन होता है। एक सच्चा रचनाकार इन मूल्यों को अनदेखा नहीं कर सकता। बल्कि इनसे प्रेरणा लेकर अपनी भावनाओं को एक सुदृढ़ आधार प्रदान करता है। इसी से उसकी वाणी में मार्मिकता आती है। इसी गुण के कारण वह जनता का अपना कवि बनता है। मुक्तिबोध के शब्दों में कहें

ग. कविता और सामाजिक, राजनैतिक मूल्य : जीवनदृष्टि और विश्वदृष्टि

"सामाजिक सम्बन्धों का जो सौन्दर्य और आकर्षण जीवन के अवरुद्ध द्वार खोलकर व्यक्ति की सब शक्तियों को मुक्त और उल्लासपूर्ण नहीं करता, एक खुली हँसी की चमक सी उसके अंग-अंग में नहीं भरता, वह एक बहुत गलत और बीमार चीज है।"[1]

"तमाम कला राजनीति है। यह एक अति परिचित और यथार्थ उक्ति है। जिस कला में राजनीति नहीं है, वह कला नहीं। बर्नार्ड शॉ और इब्सन के जमाने से लेकर ब्रेश्ट और आधुनिक इटली के अनेक विश्व विख्यात फिल्म-निर्देशक तक यही बात दुहराते आये हैं। कोरी राजनीति नहीं वह 'राजनीति' जिसमें आम आदमी की आशाएं- आकांक्षाएं सुलगती हैं। हर सच्चा कलाकार- देखा जाय, तो हर युग में- उसी अग्नि का ताप झेलता है।"[2]

कोई भी रचनाकार जिस समाज में रहता है उसके कुछ अपने सामाजिक, राजनैतिक मूल्य होते हैं। समाज ये मूल्य अपने अन्दर चलने वाली क्रिया-प्रतिक्रियाओं तथा संघर्षों की एक लम्बी श्रृंखला से अर्जित करता है। इनके पीछे एक सामूहिक दृष्टि (Collective vision) होता है। यह सामूहिक दृष्टि जनाकांक्षाओं के मेल से ही उपलब्ध होती है। इसमे एक जाति का अनुभव, उसके सुख-दुःख, उसकी आशाओं-आकांक्षाओं, उसके शोक तथा उत्सवों का प्रतिबिम्बन होता है। एक सच्चा रचनाकार इन मूल्यों को अनदेखा नहीं कर सकता। बल्कि इनसे प्रेरणा लेकर अपनी भावनाओं को एक सुदृढ़ आधार प्रदान करता है। इसी से उसकी वाणी में मार्मिकता आती है। इसी गुण के कारण वह जनता का अपना कवि बनता है। मुक्तिबोध के शब्दों में कहें

तो ऐसा रचनाकार 'समाज का अनुभव केन्द्र' होता है। शमशेर इसमें विश्वास करते हैं। तभी उनका मानना है कि "कला की अभिव्यक्ति व्यक्ति और समाज की आशाओं-आकांक्षाओं और क्षणिक समर्थताओं का एक सजीव और गतिशील दर्पण है। इस दर्पण में हम अपनी शक्लें देखते नहीं- पहचानते और समझते हैं।"[3]

समाज के दर्पण में अपनी पहचान और समझ से ही कोई कवि अपनी जीवनदृष्टि विकसित करता है। अपने समय की इस अचूक 'पहचान' और गहरी 'समझ' के कारण उसकी रचनाओं में हम प्रामाणिकता पाते हैं। इसी समझ के बूते पर वह एक नए समाज के निर्माण का स्वप्न देखता है। यह स्वप्न उसका अपना व्यक्तिगत स्वप्न नहीं होता बल्कि यह पूरी जाति का स्वप्न होता है। उसकी रचनाओं से पूरी जाति एक नए संघर्ष और नवनिर्माण की आकांक्षा से उठ खड़ी होती है। शमशेर जी ने अपने निबन्धों के संग्रह 'दोआब' में हाली के 'मुसद्दस' तथा मैथिली शरण गुप्त की 'भारत-भारती' के तुलनात्मक अध्ययन में नवनिर्माण की इन्हीं आकांक्षाओं को रेखांकित किया है। शमशेर लिखते हैं "हाली जन-समाज के बढ़ते हुए आत्मविश्वास को, लोकतंत्र की बढ़ती शै को, आने वाले आन्दोलनों को, धुंधला-धुंधला मगर असंदिग्ध रूप से महसूस कर रहे थे। इसीलिए इस्लाम का लोकतंत्रवादी पहलू अपने पाठकों के सामने रखा और अपने नबी को एक पेशवा, लगभग एक नए राष्ट्र के प्रेसिडेन्ट का सा दर्जा दिया- एक श्रेष्ठ मानव का, देवता का नहीं.....।"[4]

हाली जनसमाज की इन हलचलों को इसलिए महसूस कर पाये क्योंकि उस समय की यही राजनैतिक तथा सामाजिक मांग थी। उनकी पृष्ठभूमि में सर सैयद अहमद खाँ द्वारा चलाया

जा रहा सुधार आन्दोलन था। इस आन्दोलन ने एक रचनाकार को प्रेरित किया और "हाली ने भी अपनी कविता का पुराना स्वर बदल दिया और जाति और देश के लिए मंगलकारी उद्देश्यपूर्ण रचनाएं लिखना आरम्भ कर दी।"[5]

मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी 'भारत-भारती' की रचना इन्हीं सुधार आन्दोलनों से प्रेरित होकर की थी। किन्तु प्राचीन भारत का स्वर्णिम अतीत उनकी आँखों से ओझल नहीं होता। उनका स्वप्न उसी आदर्श समाज की पुनः स्थापना है। इसीलिए "मुसद्दस और भारत भारती दोनों अपने वर्ण्य विषय और उद्देश्य में समान हैं, पर भिन्न 'देशकाल' के प्रभाव से उनके निहित दृष्टिकोण और भावनाओं के रूप में कुछ अन्तर आ गया है- मौलिक अन्तर।"[6] और इस मौलिक अन्तर के चलते शमशेर महसूस करते हैं कि गुप्तजी".........अपने समय की प्रगति से कुछ पीछे पड़ गए- से जान पड़ते हैं।"[7] इसीलिए शमशेर को लगता है कि 'हिन्दी में हाली का समानान्तर साहित्यकार वास्तव में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र है।"[8] और ऐसा उन्हें इसलिए लगता है क्योंकि "हाली और भारतेन्दु जी के समय में सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय जागरण की नव-युगीन चेतना, पंजाब और युक्तप्रान्त में अपने तीव्रतम रूप में उभरी हुई थी। इन दोनों महान साहित्यकारों का गद्य और पद्य उस युग की पूर्ण स्फूर्ति लिए हुए है। उस युग की विचारधारा में अपनी भाषाओं के ये दोनों प्रथम और अग्रणी खेवा हैं।"[9]

शमशेर जब "मुसद्दस" तथा "भारत-भारती" पर अपना निबन्ध लिख रहे थे वह जमाना भी राष्ट्रीय भावनाओं के उठान का था। आजादी मिलने में अभी एक साल बाकी था।

विजय मिलने को ही थी। पूरा राष्ट्र एक नए विश्वं में अपनी आने वाली भूमिका को लेकर उत्साहिंत था। द्वितीय विश्वयुद्ध खत्म हो चुका था। उसके साथ ही विश्व में बड़े-बड़े परिवर्तन घटित हो रहे थे। शमशेर इन परिवर्तनों को बड़े गौर से देख रहे थे। अपने समय की युवा पीढ़ी का उत्साह उनमें भी हिलोरे ले रहा था। अपने 'मुसद्दस' और भारत-भारती की सांस्कृतिक भूमिका वाले लेख में ही उन्होंने आह्वान के स्वर में लिखा था"......अस्तु, आज दूसरे विश्वव्यापी महाभारत के बाद- जब संयुक्त लोक-शक्ति फासिज्म को, अन्तिम नहीं, तो निर्णयात्मक रूप से अवश्य ही हरा चुकी है, जब 'राष्ट्रीयता' की विभिन्न परिभाषाएं देश-विदेश में प्रचलित हैं; और 'स्वाधीनता, 'देश', 'जाति', 'धर्म', 'वर्ग', 'शासन, 'जनअधिकार' आदि के वास्तविक रूप और उनकी यथार्थ सीमाएं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुसार रोज-रोज निर्धारित और नियोजित होती हैं, और इस घनीभूत विषमता के विरोध में सभी देशों के दलित और अपहृत वर्ग संगठित मोर्चा बनाने लगे हैं, ऐसे समय में- हमें क्या कुछ आवश्यकता नहीं है अपनी स्वस्थ परम्पराओं को उनके सच्चे रूप में समझने की, उनसे शक्ति, स्वास्थ्य और प्रेरणा लेने की, अपने भविष्य निर्माण में उनसे आवश्यक सहायता और योग प्राप्त करने की?"[10]

लेकिन शमशेर जी का यह उत्साह बहुत समय तक नहीं रहता। आजादी मिलते ही उनको लगता है कि जिस आजादी की कल्पना उन्होंने की थी वह कुछ और थी। यह तो झूठ है। उनकी पूरी पीढ़ी का तेजी से मोहभंग होता है। आजादी मिलने के एक वर्ष बाद ही अपने एक लेख में वे लगभग नास्टैल्जिक होकर स्वातंत्र्य आन्दोलन के जोश और आकांक्षाओं को याद करते हैं "उस खिलाफत वाले पहले सत्याग्रह आन्दोलन में हमारे इतिहास और संस्कृति की सभी

धाराएं मिलकर एक प्रचण्ड शक्ति का वेग बन गयी थीं। मगर वाह, उस अपराजेयता की बंधी हुई मुट्ठी को साम्राज्यवाद की बेमिसाल कूटनीति ने किस तरह मसल-मसलकर धीरे-धीरे ढीला किया है- तब से आज तक का इतिहास यही है- उसको आज नेताओं की जख्मी ऊँगलियों की दुःखती नसें और जोड़-बन्द ही जानते हैं- कलाई से पंजा जैसे अलग हो गया है, और ऊँगलियां आपस में नहीं मिलती। सब शक्तियां अलग-अलग, और कैसी अलग-अलग।"[11]

सामाजिक शक्तियों के बिखराव का नतीजा यह है कि "हर तरफ ऊपरी तबका नीचे वालों की गर्दन पर सवार है, और अपने पूंजी के हित उस पर ढोकर, उसे पसलियों के बल चलाना चाहता है। हुकूमत, व्यापार, नौकरी और धंधा सब पर दाँव लगा हुआ है। बाहर वालों का भी और घरवालों का भी। बल्कि मिलकर।"[12]

इस अराजक स्थिति का शमशेर पर भी प्रभाव पड़ता है। स्वप्न जब यथार्थ से दो-चार होता है तो आदर्शों का महल ताश के पत्तों की तरह बिखर जाता है। एक अजीब सी जड़ता पूरे समाज में घर कर लेती है। शमशेर का कवि इससे प्रभावित होता है। लगभग यही दौर है जब उनकी कविता में अतियथार्थवाद का प्रभाव आना शुरु होता है। राजेश जोशी ने सही लक्षित किया है "सुर्रियलिज्म का यह अंदाज उनकी प्रारम्भिक कविताओं में लगभग नहीं है। यह प्रभाव 45 के आसपास शुरु होता है और आजादी के बाद, नेहरू युग में कुछ गाढ़ा होता दिखता है। क्या आजादी के बाद के एक अनगढ़ अराजक दौर ने इसे पैदा किया है? उस सामाजिक, राजनीतिक उथल-पुथल ने, जिसमें एक ओर तेलंगाना है और दूसरी ओर देश का विभाजन।

जिसमें स्वप्न और यथार्थ एक-दूसरे की ओर पीठ किए खड़े हैं: लेकिन फिर भी एक-दूसरे में गलबहियाँ डालने को उत्सुक भी हैं। सामाजिक स्वप्न की नेहरूवादी अवधारणाएँ हैं। नेहरू और कम्युनिस्टों के बीच समर्थन और विरोध का एक अजीब सा द्वैत बन रहा है। एक मोहक बूर्ज्वा स्वांग। इस द्वैत की सबसे जटिल अभिव्यक्ति शमशेर और मुक्तिबोध में ही दिखाई देती है। लेकिन शमशेर इस जटिल स्थिति से दो-चार होने के लिए मुक्तिबोध की तरह अत्यधिक बौद्धिकता का रास्ता नहीं चुनते। अतियथार्थवाद भी इस अत्यधिक बौद्धिकता का विरोध करता है। लेकिन शमशेर को अतियथार्थवादियों का जीवन का एकान्त काल्पनिक पक्ष ही प्रिय नहीं है। वे पॉल एलुआर और लुई आरॉगा की तरह राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों से दो-चार होना चाहते हैं।''[13]

इन सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों से दो-चार होने के लिए शमशेर के पास विचारधारा का आधार है। यह विचारधारा ही है जो उनको 'मार्बिड' तथा 'रूग्ण' मनःस्थिति से उबारती है। इस संदर्भ में भी उनके आदर्श उनके प्रिय कवि लुई अरॉगा तथा पॉल वेलरी हैं। मार्क्सवाद की इस वैचारिक पृष्ठभूमि के कारण ही उन्हें ''सामाजिक एवं राजनीतिक प्रसंगों मे अपनी जीवनदृष्टि के प्रति किसी तरह का संकोच या संदेह नहीं है।''[14]

सन्दर्भ

1. पलाश-वन, दोआब, कुछ गद्य रचनाएं, पृष्ठ 71

2. कैफी आजमी का कवि व्यक्तित्व, कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 123

3. अमूर्त कला, कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 165

4. 'मुसद्दस' और 'भारत भारती' की सांस्कृतिक भूमिका, दोआब, कुछ गद्य रचनाएं, पृष्ठ 32

5. वही, पृष्ठ 29

6. वही, पृष्ठ 35

7. वही, पृष्ठ 37

8. वही पृष्ठ 35

9. वही

10. वही, पृष्ठ 40

11. राष्ट्रीय बसन्त की प्रथम कोकिला, दोआब, कुछ गद्य रचनाएं, पृष्ठ 43

12. वही

13. शमशेर का कवि व्यक्तित्व : राजेश जोशी, जनवरी- जून 1995, पल-प्रतिपल, पृष्ठ 122

14. वही, पृष्ठ 125

घ. काव्य और विचारधारा के रिश्ते- शमशेर की नजर में :

"इसका सीधा-साधा मतलब हुआ अपने चारों तरफ की जिन्दगी में दिलचस्पी लेना, उसको ठीक-ठीक यानी वैज्ञानिक आधार पर (मेरे नजदीक यह वैज्ञानिक आधार मार्क्सवाद है) समझना और अनुभूति और अपने अनुभव को इसी समझ और जानकारी से सुलझा कर स्पष्ट करके, पुष्ट करके अपनी कला-भावना को जगाना। यह आधार इस युग के हर सच्चे और ईमानदार कलाकार के लिए बेहद जरूरी है। इस तरह अपनी कला-चेतना को जगाना और उसकी मदद से जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को अपनी कला में सजीव से सजीव रूप देते जाना : इसीको मैं 'साधना" समझता हूँ और इसी में कलाकार का संघर्ष छिपा हुआ देखता हूँ। कला में भावनाओं की तराश-खराशव चमक-तेजी और गरमी सब उसी से पैदा होगी। उसी 'संघर्ष' और 'साधना' से जिसमें अन्तर-बाहर दोनों का मेल है।"[1]

विचारधारा को शमशेर किसी कलाकार के लिए अपने परिवेश तथा अपने अनुभवों को समझने का वैज्ञानिक आधार मानते हैं। इससे रचनाकार की दृष्टि में निखार आता है और वह अपने समय को ज्यादा गहराई से समझकर उसका विश्लेषण करने की योग्यता पा जाता है। रचनाकार की सफलता इसी में है कि वह विचारधारा का अपनी अभिव्यक्ति को सजीव तथा मार्मिक बनाने में कितना उपयोग कर ले जाता है। इसी में वे कलाकार का संघर्ष देखते हैं। उनके इसी विश्वास की अभिव्यक्ति 'दूसरा सप्तक' में प्रकाशित उनके परिचय में हुई है "सन 45 में नया साहित्य के सम्पादन के सिलसिले में बम्बई गया। वहां कम्युनिस्ट पार्टी के संगठित जीवन में, अपने मन में अस्पष्ट से बने हुए सामाजिक आदर्शों का मैंने एक बहुत सुन्दर सजीव रूप

देखा। मेरी काव्य प्रतिभा ने उससे काफी लाभ उठाया।"[2] शमशेर विचारधारा को रचनाकार के विकास के लिए आवश्यक मानते हैं। वे जानते हैं कि आधुनिक युग की आपाधापी में कविता सिर्फ भावों के सहारे अपनी अभिव्यक्ति में समर्थ नहीं हो सकती। मुक्तिबोध उन्हें इसीलिए प्रिय है कि "उनके अन्दर 'मस्तिष्कहीन कोरी भावुकता' (माइंडलेस फीलिंग) नहीं है। उनके भावों के ज्वार के पीछे विचारों का दीर्घ दोहन है।"[3]

शमशेर सिर्फ विचार पर ही नहीं कवि की भावना की सच्चाई पर भी जोर देते हैं। उनके अनुसार "सबसे बड़ा यथार्थ वह है- जो हमारे अन्दर है- जो शब्दों में नहीं रखा जा सकता। शब्दों में कभी-कभी क्या, बल्कि अक्सर, उसका उपहास-सा हो जाता है। शब्दों में आकर वह बदल जाता, गलत-सा हो जाता, और अपना पूरा मतलब खो देता है।......वह यथार्थ सिर्फ इशारों में व्यक्त होता है।"[4]

यानि कि अन्दर और बाहर के मेल से ही सच्ची अभिव्यक्ति संभव है। यथार्थ की प्रामाणिकता इस संतुलन से ही संभव है। शमशेर का मानना है कि "कोई कलाकृति किसी अनुभूति को कितनी सच्चाई और सफलता से व्यक्त करती है इस पर उसका मूल्य है।"[5] शमशेर की ऐसी ही मान्याओं से प्रेरित होकर श्री विजयदेव नारायण साही यह निष्कर्ष निकालने की जल्दीबाजी करते हैं कि मार्क्सवाद शमशेर की कविता के हाशिए पर है। पर यह निष्कर्ष सही नहीं है। अपनी प्रारम्भिक कविताओं के संग्रह 'उदिता' की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट लिखा है "यानी, जो हिन्दी कविता में छायावाद के बाद आने वाला नरेन्द्र और बच्चन के 'अभाव' और सोशल घुटन; और एक हद तक पलायन के अलावा जिन्दगी का कुछ जियादा टूटा फूटापन

और उखड़ा हुआ बहाव सा लिए हुए है। उस बिचले लबके की जिन्दगी के भँवर- खामोश, तेज होते हुए भँवर के चक्कर इस और ऐसी कविता में मिलेंगे जिससे निकलने के लिए एक तिनके का सहारा सिर्फ सोशलिज्म ही आड़े आया। जी, वही प्रगतिवाद का आन्दोलन। जो कि दरअसल आज की जिन्दगी की सच्ची परख का आन्दोलन है, कला को जिन्दगी की गहरी नीवों पर ऊपर उठाने का आन्दोलन है। वह गहरी नीवें मार्क्सवाद के विज्ञान की हैं। (वह चीज जो कि वास्तव में मेरी कविता में आते-आते भी नहीं आ पायी है)।"[6]

शमशेर जिन्दगी की सच्ची परख का आन्दोलन प्रगतिशील आन्दोलन को मानते हैं जिसकी नीवें मार्क्सवाद के विज्ञान की है। वह मार्क्सवाद जो उनकी कविता में आते-आते भी नहीं आ पाया। 'उदिता' की भूमिका में ही अन्यत्र उन्होंने स्वीकार किया है कि "मैं इन मेहनतकशों का कवि वस्तुतः बन नहीं सका। अपने वर्ग के संस्कारों का दोष।"[7] किन्तु यह शमशेर की विनम्रता है। अपनी कविता के बारे में उनकी इस भावना के पीछे तत्कालीन प्रगतिशील आन्दोलन की कुछ प्रवृत्तियों का भी हाथ हो सकता है। उन प्रवृत्तियों का जो कविता के प्रति यांत्रिक दृष्टिकोण से पनपती हैं। किन्तु शमशेर प्रतिबद्धता की इस यांत्रिक परिभाषा की परिणतियों को समझ रहे थे। वे जीवन को उसकी समग्रता में देखना चाहते हैं। 'अमूर्त कला' जैसे विषय पर लिखते हुए उन्होंने कहा भी था "अपने आप में जीवन ही है, अगर कुछ है तो।"[8] शमशेर जानते हैं कि "काव्य वस्तु की वास्तविकता-ठोसपन, ठसपन नहीं- चाहे फिर वह वास्तविकता कितनी ही छोटी हो- मगर वास्तविकता जो कि दूसरे के दिल की मुट्ठी में कुछ-कुछ आ जाती हो (....जाहिर है कि वह जीवन में आधारों की नैतिकता का कोई पहलू है.... जिसकी टेक-सी

कवि जाने-अनजाने तौर से अपने पाठक को देता है;....।"[9]

यह जीवन में 'आधारों की नैतिकता का कोई पहलू' वस्तुतः मार्क्सवाद है। इसीलिए शमशेर को मुक्तिबोध प्रिय कवि लगते हैं क्योंकि".... वह युग के उस चेहरे की तलाश करते हैं जो आज के इतिहास के मलबे के नीचे दब गया है, अगर मरा नहीं है। जिन अनुभूतियों को इस कड़ियल कवि ने झेला है उनमें लगातार जीकर, उनकी अग्निपरीक्षा देकर वह आ खड़ा हुआ है जहां वह प्रत्येक संघर्षशील देश और जनता का अपना हो गया है।"[10]

मुक्तिबोध को यह व्यापक स्वीकृति इसलिए मिली क्योंकि उनमें दृष्टि की संकीर्णता नहीं है। मुक्तिबोध पर लिखे अपने लेख में शमशेर लिखते हैं "मुक्तिबोध ने छायावाद की सीमाएं लांघकर प्रगतिवाद से मार्क्सी दर्शन ले, प्रयोगवाद के अधिकांश हथियार संभाल और उसकी स्वतंत्रता महसूस कर, स्वतंत्र कवि- रूप से, सब वादों और पार्टियों से ऊपर उठकर, निराला की सुथरी और खुली मानवतावादी परम्परा को बहुत आगे बढ़ाया।"[11] उन निराला की परम्परा को आगे बढ़ाया जो शमशेर के लिए सघनतम की आँख हैं। वे जब भी भटकते हैं तो निराला ही रास्ता सुझाते हैं। कहने का मतलब है कि शमशेर में प्रतिबद्धता की कोई यांत्रिक अवधारणा नहीं है। वे समाज के साथ रचनाकार की क्रिया-प्रतिक्रिया (Interaction) में ही विचारधारा की पुष्टि तथा उसका विकास देखते हैं। अपनी उदारता में वे यहां तक कहते हैं कि "पूरी राजनीतिक स्थिति का यथार्थ सभी राजनीतिक विचारों और हलचलों के सापेक्ष अध्ययन द्वारा ही स्पष्ट हो सकता है और जो साहित्यकार, कलाकार द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक दृष्टि से इस श्रम के लिए तत्पर होगा,

वही अपनी कला के यथार्थ संदर्भों तक पहुंच सकेगा। मेरे विचार से इसके लिए किसी दल या पार्टी से 'कमिटेड' होना जरूरी और लाजिमी नहीं। किसी भी प्रकारकी निष्ठापूर्ण सामाजिक कार्यशीलता साहित्यकार, कलाकार के लिए हमेशा बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।"[12] अब शमशेर की इस उदारता और व्यापक दृष्टिकोण से अगर यह निष्कर्ष निकाला जाय कि प्रगतिवाद उनकी कविता के हाशिए पर है तो यह उनके साथा ज्यादती नहीं तो और क्या है?

मलयज से अपनी बातचीत में शमशेर ने स्पष्ट स्वीकार किया है "मार्क्सवाद और मेरे आदर्शवाद में कम से कम मेरे लिए कोई विरोधाभास नहीं रहा, मार्क्सवाद मेरे तई मेरे उस आदर्शवाद का एक जुज था, कोई सिद्धान्तवादिता नहीं, वह मेरी एक रुहानी जरूरत की पूर्ति करता था।... मार्क्सवाद मेरी जरूरत थी, सच्ची जरूरत, उसने मुझे मार्बिड और रूग्ण मनःस्थिति से, जिसमें कि मुझे डर था कि पड़ा रहकर मैं बिल्कुल ही डूब जाऊँगा, सपाट हो जाऊँगा, मुझे उबारा। मार्क्सवाद का जनवादी रूप, उसकी जनवादी आकांक्षा हमेशा मुझे आकर्षित करती रही- बुनियादी तौर पर मुझे हर वह चीज आकर्षित करती है जो मुझसे, मेरी प्रकृतिसे भिन्न हो; क्योंकि मुझे लगता है कि इस तरह मेरी अपनी कोई कमी पूरी हो रही है उस दूसरे में...... मैं जो नहीं हूँ और जो होना चाहता हूँ, इसके संघर्ष में पड़ने और उस संघर्ष का सब जोखिम उठाने के सिवाय मेरे पास एकमात्र रास्ता था कि मैं अपने रूग्ण और मार्बिड एहसासों के अंधे कुएं में हमेशा के लिए गिर जाऊँ......इसीलिए मैं कहता हूँ मार्क्सवाद और मेरे आदर्शवादी स्वभाव में कोई अन्तर्विरोध नहीं।"[13]

संदर्भ :

1. वक्तव्य, दूसरा सप्तक, पृष्ठ 87
2. परिचय, दूसरा सप्तक, पृष्ठ 84
3. एक विलक्षण प्रतिभा, कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 187
4. अमूर्त कला, कुछ और गद्य रचनाए, पृष्ठ 166
5. वही, पृष्ठ 167
6. सीधे अपने पाठक से, भूमिका, उदिता- अभिव्यक्ति का संघर्ष पृष्ठ 105
7. वही
8. अमूर्त कला, कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 166
9. डायरी, जनवरी 52, कुछ गद्य रचनाएं, पृष्ठ 272
10. जीवन जो हारा नहीं खत्म हो गया, कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 143
11. एक विलक्षण प्रतिभा कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 190
12. नामवर, कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 152
13. बात बोलेगी, पर कब ? मलयज, सापेक्ष, शमशेर अंक, पृ. 46

ङ. सौन्दर्य दृष्टि और कलात्मक अनुशासन :

"कविता के माध्यम से मैंने प्यार करना, अधिक से अधिक चीजों को प्यार करना सीखा है। मैं उसके द्वारा सौंदर्य तक पहुँचा हूँ। मेरी चेतना इतनी, कह लो कंडीशंड हो चुकी है, कि हर चीज में मुझे एक अंतःसौन्दर्य दिखाई देता है, बिना किसी अतिरिक्त कांशंस प्रयत्न के, सौंदर्य का पूरा एक कम्पोजीशन..........दृश्य जगत पहले मेरी नज़र में सौंदर्य के एक कम्पोजीशन के रूप में ही आता है।"[1]

वस्तुजगत में सौन्दर्य की यह अनायास अनुभूति शमशेर के काव्य की अद्‌भुत खासियत है। उनका सौंदर्यबोध इतना व्यापक और परिष्कृत है कि उनकी कविताएं चीजों के देखने की हमारी दृष्टि में गहरा परिवर्तन उपस्थित कर देती हैं। वे दृश्य जगत को एक खास कोण से देखने की अपेक्षा हमसे करती हैं अन्यथा उनका अंतःसौन्दर्य हमसे ओझल हो जाता है। दृश्य जगत को सौंदर्य के एक कम्पोजीशन के रूप में देखने की इस कला प्रतिभा के कारण ही उन्हें लगता है कि "तस्वीर, इमारत, मूर्ति, नाच, गाना और कविता- इन सबमें बहुत कुछ एक ही बात अपने-अपने ढंग से खोलकर या छिपाकर या कुछ खोलकर कुछ छिपाकर कही जाती है। मगर इनके ये अलग-अलग ढंग दरअसल एक-दूसरे से ऐसे अलग-अलग नहीं हैं, जैसे कि ऊपरी तौर पर लगते हैं।"[2] शमशेर अपनी कविताओं में इस 'कुछ खोल कर कुछ छिपाकर' कहने की कला का बखूबी प्रयोग करते हैं। दृश्य जगत का यह अंतःसौंदर्य भले ही उन्हें सौन्दर्य के एक 'कम्पोजीशन' के रूप में दिखाई देता हो किन्तु वे हमें इस सौन्दर्य को 'दिखाना' नहीं 'अनुभूत' कराना चाहते हैं। उनकी कविताएं हमसे मांग करती हैं कि इस सौंनदर्य का पान करने के लिए हम उनकी

अन्तरात्मा में प्रवेश करें। किन्तु यह काम उतना आसान नहीं है। बकौल मुक्तिबोध "शमशेर की आत्म ने अपनी अभिव्यक्ति का एक प्रभावशाली भवन अपने हाथों तैयार किया है। उस भवन में जाने से डर लगता है- उसकी गम्भीर प्रयत्नसाध्य पवित्रता के कारण।"[3]

इसीलिए हमें खुद को अभिव्यक्ति के उस प्रभावशाली भवन में प्रवेश से पहले खुद को तैयार करना पड़ता है। उस सौंदर्य को शमशेर की दृष्टि से देखने की आदत बनानी पड़ती है। सौन्दर्य की आड़ी-तिरछी रेखाओं में रंग भरने के लिए अपनी कल्पना के घोड़े दौड़ाने होते हैं। उन वास्तविक भावप्रसगों की उद्‌भावना करनी होती है जो कि उन कविताओं की अभिव्यक्ति के मूल में रहे होंगे और जिनके बारे में शमशेर हमें साफ-साफ कुछ नहीं बताते, सिर्फ़ एक इशारा करते हैं- एक हल्का सा इशारा बस!

एक सोने की घाटी जैसे उड़ चली

जब तूने अपने हाथ उठाकर

मुझे देखा

एक कमल सहस्रदली होठों से

दिशाओं को छूने लगा

जब तूने आँख-भर मुझे देखा।

न जाने किसने मुझे अतुलित

छवि के भयानक अतल से

निकाला......जब तू, बाल लहराए,

मेरे सम्मुख खड़ी थी : मुझे नहीं ज्ञात।

सच बताना, क्या तू ही तो नहीं थी?

तूने मुझे दूरियों से बढ़कर

एक अहिर्निश गोद बनकर

लपेट लिया है,

इतनी विशाल व्यापक तू होगी,

सच कहता हूँ, मुझे स्वप्न में भी

गुमान न था।

हाँ, तेरी हँसी को मैं उषा की भाप से निर्मित

गुलाब की बिवखरती पंखुड़ियाँ ही समझता थाः

मगर वह मेरा हृदय भी कभी छील डालेगी,

मुझे मालूम न था।

तेरी निर्दयता ही शायद दया हो,

दोनों की एकप्राणता ही शायद

तेरा अजानपन और

तेरा सौंदर्य है।[4]

इस कविता का शीर्षक सौन्दर्य है। यहाँ बात स्त्री और पुरुष के बीच प्रेम और मिलन की है, स्त्री के शरीर की है। लेकिन सिर्फ़ इतना ही नहीं हैं। शमशेर यहाँ वास्तविक भाव प्रसंगों को उठाकर 'कॉसमिक' बिम्बों का निर्माण कर देते हैं और अनुभव का पूरा वितान सौन्दर्य की

अलौकिक अनुभूति में बदल जाता है। यहाँ प्रेम सिर्फ़ प्रेम नहीं रह जाता बल्कि विशुद्ध ऐन्द्रिक अनुभव में बदल जाता है अपने पूरे अध्यात्म के साथ। यह अध्यात्म 'अजानपन' का है जो सौन्दर्य का पर्यायवाची है। इस 'अजानपन' ने 'अहर्निश' गोद बनकर कवि को लपेट लिया है। यह इतना 'विशाल' और 'व्यापक' है कि लगता है 'एक कमल सहस्रदली होटों से दिशाओं को छूने लगा है।'' यहाँ अतुलित छवि का भयानक अतल है।' शायद 'निर्दयता' ही 'दया' है। दोनों एकप्राण हैं।

जीवन की तुला में

प्राणों का संयमन।[5]

डॉ. विजयदेव नारायण साही सही कहते हैं कि ''तात्विक रूप में शमशेर की काव्यानुभूति सौन्दर्य की ही अनुभूति है।''[6] और शमशेर के यहाँ 'काव्यानुभूति और जीवनानुभूति एक ही वस्तु है।''[7] शमशेर की समस्या इनके संतुलन की है। उनकी महत्वाकांक्षा सौंदर्यानुभूति में वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने की है। अपनी कविताओं में वे इस वस्तुनिष्ठता को साधने की भरसक कोशिश करते दिखाई पड़ते हैं। वे जानते हैं ''सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल-छिन होता रहता है। अब यह हम पर है, खास तौर से कवियों पर, कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनन्त और अपार लीला को कितना अपने अन्दर घुला सकते हैं।''[8]

शमशेर ने इस 'अपार' और 'अनन्त' लीला को उसके सारे रहस्यों के साथ अपने अंदर घुलाया है। इसीलिए इस 'अपार' और 'अनन्त' सुन्दरता की अभिव्यक्ति वे इतने संक्षिप्त कि कहीं-कहीं मौन और कम से कम शब्दों में कर पाये हैं। उनकी कला साधना सौन्दर्य साधना है।

इस सौंदर्य साधना में उन्होंने जो दृष्टि और क्षमता उपार्जित की है वह उनकी बिल्कुल निजी चीज है। इसीलिए मुक्तिबोध कहते हैं कि "शमशेर निःसन्देह, एक अद्वितीय कवि हैं।"[9] क्योंकि उन्होंने जो 'अभिव्यक्ति-शिल्प' अर्जित की है वह हिन्दी साहित्य को उनकी 'अनूठी देन' है।

शमशेर पहले चित्रकार बनना चाहते थे। उन्होंने बाकायदा इसका प्रशिक्षण भी लिया था। वे फ्रांस के कला आन्दोलनों से भी प्रभावित थे। उनके भीतर बैठे चित्रकार ने उनकी कविता पर बहुत गहरा रंग डाला है। उन्होंने स्वीकार भी किया है- "पर मैंने अपनी चित्रकारी के शौक को कविता में काफी पूरा किया.......मैंने चीज़ों को अक्सर पेंटिंग की शक्ल में ग्रहण किया है, भले ही उनका कोई बाह्य रूपाकार न हो रंग न हो, पर रंगों के प्रभाव उनमें हैं- रंगों के भावात्मक रूप।"[10] शमशेर ने अपनी कविताओं में रंगों के भावात्मक रूप को पकड़ने की कोशिश की है। जैसे एक चित्रकार केवल कुछ ही ब्रश स्ट्रोक्स से एक दृश्य को उपस्थित कर देता है उसी तरह शमशेर भी अपनी कविता में शब्दों की मितव्ययिता से, केवल कुछ बिम्बों से ही हमारे सामने दृश्य को मूर्त कर देते हैं-

सूना-सूना पथ है, उदास झरना
एक धुंधली बादल-रेखा पर टिका हुआ आसमान
जहाँ वह काली युवती
हँसी थी।[11]

शमशेर की इसी विशेषता को लक्ष्य करके मुक्तिबोध ने लिखा था "शमशेर की मूल मनोवृत्ति एक इम्प्रेशनिस्टिक चित्रकार की है। इम्प्रेशनिस्टिक चित्रकार अपने चित्र में केवल उन

अंशों को स्थान देगा जो उसके संवेदना-ज्ञान की दृष्टि से, प्रभावपूर्ण संकेतशक्ति रखते हैं। वह दृश्य चित्र में उन्हीं अंशों को स्थान देता है कि जो उसके संवेदनाज्ञान की दृष्टि से उस दृश्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण, अतः प्रगाढ़, प्रभावपूर्ण अंग हैं। केवल कुछ ही ब्रशेज़ में वह अपना काम करके, दृश्य के शेष अंशों को दर्शक की कल्पना के भरोसे छोड़ देता है। दूसरे शब्दों में, इम्प्रेशनिस्ट चित्रकार, दृश्य के सर्वाधिक संवेदनाघात करने वाले अंशों को प्रस्तुत करेगा और यह मानकर चलेगा कि यदि यह संवेदना-घात दर्शक के हृदय में पहुँच गया तो दर्शक अचित्रित शेष अंशों को अपनी सृजनशील कल्पना द्वारा भर लेगा।''[12]

शमशेर चित्रकला की इस टेकनीक का इस्तेमाल अपनी कविताओं में अक्सर करते हैं। वे शब्दों के माध्यम से एक बिम्ब चित्र का निर्माण करते हैं। अपने आस-पास तथा प्रकृति का बहुत ही गहरा एवं सूक्ष्म पर्यवेक्षण इसमें उनकी मदद करता है। उनकी कविता में ''एक दरिया उमड़कर पीले गुलाबों का चूमता है बादलों के झिलमिलाते स्वप्न जैसे पांव। वहाँ 'मौन में बुझी तलवार' है तो सुरमई गहराइयाँ' भी हैं 'भाव में स्थिर।' शमशेर के लिए सौंदर्य ऐसा है जैसे 'अंधकार के चमकीले निर्झर में; तुम्हारे स्वर चमकते हैं।' 'खून बजता है हवा में'' और वहाँ है 'धुँधली बादल रेखा पर टिका हुआ आसमान।'

'सौन्दर्य' शीर्षक से ही शमशेर की एक अन्य कविता के कुछ अंश यहाँ उद्धृत हैं-

एक अंधकार के चमकीले निर्झर में

तुम्हारे स्वर चमकते हैं :

एक इंतजार के झुरमुट में

अंशों को स्थान देगा जो उसके संवेदना-ज्ञान की दृष्टि से, प्रभावपूर्ण संकेतशक्ति रखते हैं। वह दृश्य चित्र में उन्हीं अंशों को स्थान देता है कि जो उसके संवेदनाज्ञान की दृष्टि से उस दृश्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण, अतः प्रगाढ़, प्रभावपूर्ण अंग हैं। केवल कुछ ही ब्रशेज़ में वह अपना काम करके, दृश्य के शेष अंशों को दर्शक की कल्पना के भरोसे छोड़ देता है। दूसरे शब्दों में, इम्प्रेशनिस्ट चित्रकार, दृश्य के सर्वाधिक संवेदनाघात करने वाले अंशों को प्रस्तुत करेगा और यह मानकर चलेगा कि यदि यह संवेदना-घात दर्शक के हृदय में पहुँच गया तो दर्शक अचित्रित शेष अंशों को अपनी सृजनशील कल्पना द्वारा भर लेगा।''[12]

शमशेर चित्रकला की इस टेकनीक का इस्तेमाल अपनी कविताओं में अक्सर करते हैं। वे शब्दों के माध्यम से एक बिम्ब चित्र का निर्माण करते हैं। अपने आस-पास तथा प्रकृति का बहुत ही गहरा एवं सूक्ष्म पर्यवेक्षण इसमें उनकी मदद करता है। उनकी कविता में ''एक दरिया उमड़कर पीले गुलाबों का चूमता है बादलों के झिलमिलाते स्वप्न जैसे पांव। वहाँ 'मौन में बुझी तलवार' है तो सुरमई गहराइयाँ' भी हैं 'भाव में स्थिर।' शमशेर के लिए सौंदर्य ऐसा है जैसे 'अंधकार के चमकीले निर्झर में; तुम्हारे स्वर चमकते हैं।' 'खून बजता है हवा में'' और वहाँ है 'धुँधली बादल रेखा पर टिका हुआ आसमान।'

'सौन्दर्य' शीर्षक से ही शमशेर की एक अन्य कविता के कुछ अंश यहाँ उद्धृत हैं-

एक अंधकार के चमकीले निर्झर में

तुम्हारे स्वर चमकते हैं :

एक इंतजार के झुरमुट में

वह फल है

जिसका अंतर एक तीखी पुकार है

उस आकाश में तुम्हारी गूँज

कि जैसे खून बजता हो हवा में

कि जैसे मुक्त जीवन का प्रवाह बजता हो

सौंदर्य जो त्वचा में नहीं

थिरकते रक्त में नहीं

मस्तिष्क में नहीं

नहीं :

कहीं इनके पार से

बरसता है अणु-अणु पल-पल में

बदन में, दृष्टि में-

शब्द में : और उनके पार से

कहीं शब्द के अर्थ में

दुःख-सा मौन-सा

अपरमित सुख की चेतना में

भधता है

मथता है।

ओ स्पर्श!

मुझे क्षमा करना

कि तुम मुझी में होकर मुझी से परे हो।

ओ माध्यम!

क्षमा करना

कि मैं तुम्हारे पार जाना चाहता रहा हूँ।............[13]

शमशेर के यहाँ ऐन्द्रिक अनुभवों का एक अजीब सा घालमेल है। वहाँ आंखें सुनती हैं, कान देखते हैं। उनके यहाँ उस आकाश में तुम्हारी गूंज कि जैसे खून बजता हो हवा में।' और 'अंधकार के चमकीले निर्झर में' चमकते' हुए 'स्वर' हैं। इस घालमेल से एक अलग तरह का संगीत बनता है जो कविताओं में एक अलग तरह का रंग भरता है। शमशेर जानते हैं कि 'सौन्दर्य जो त्वचा में नहीं' है और 'थिरकते रक्त में नहीं', वह 'कहीं' इन सबके पार से बरसता है अणु-अणु पल-पल में। सौन्दर्य 'शब्द में : और उनके पार से कहीं शब्द के अर्थ में' बरसता है 'दुःख-सा-मौन-सा'। इसी 'पल-पल' बरसते सौंदर्य का पान शमशेर का साध्य है। लेकिन उन्हें अपनी सीमाओं का भी ज्ञान है। उन्हें अपने क्षितिज की अनंतता का भी ज्ञान है। इसलिए उनमें 'स्पर्श' उनमे होकर भी उनसे 'परे' है। इसीलिये वे हमेशा 'माध्यम' के 'पार' जाना चाहते रहे हैं। उनकी कविता माध्यमों के खोज की भी कविता है। नित नये प्रयोग उनका स्वभाव है। कलात्मकता के अतिरिक्त आग्रह की वज़ह से ऐसा नहीं बल्कि कवि की अपनी आंतरिक मांग के कारण ऐसा है। इसीलिए उनकी कला इतनी जीवंत और प्रकृत है। कुछ भी थोपा हुआ नहीं है।

आधुनिक हिन्दी कविता में विभिन्न कला अनुशासनों की गहरी समझ का सर्वाधिक उपयोग यदि किसी कवि ने अपनी कविता में किया है तो वह शमशेर हैं। चित्रमयता तो जैसे उनकी कविताओं का प्राण है। क्योंकि मुक्तिबोध के शब्दों में "शमशेर ने अपने हृदय में आसीन चित्रकार को पदच्युत कर, कवि को अधिष्ठित किया है।"[14] लेकिन शमशेर ने इसमें बहुत कुछ

अपने कवि का भी जोड़ा है। शमशेर ने दृश्यों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों को पहचानकर अपनी कविताओं में उनका उपयोग किया है। केवल चित्रकार के लिए यह संभव न होता। भावनाओं के सूक्ष्म रूपों की जैसी अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में हुई है वह शायद संभव न हो पाती यदि शमशेर ने अपनी चित्रदृष्टि का इस्तेमाल न किया होता।

एक नीला दरिया बरस रहा है

और बहुत चौड़ी हवाएं हैं

मकानात हैं मैदान

किस कदर ऊबड़-खाबड़

मगर

एक दरिया

और हवाएं

मेरे सीने में गूँज रही हैं।[15]

शमशेर की कविताओं में रूप (फार्म) के लिए कोई अतिरिक्त प्रयत्न नहीं दीख पड़ता। इसका मतलब यह नहीं है कि वे रूप के प्रति असावधान कवि हैं। दरअसल उनकी कविताओं में रूप और वस्तु की अलग सत्ता है ही नहीं। वे एक दूसरे में घुले-मिले हैं। ऐसा 'विलयनवादी' काव्य शमशेर ही लिख सकते थे। उनकी कविताओं को पढ़ते हुए महसूस होता है जैसे वस्तु ही ढ़लकर रूप बन रही हो। पूर्वी और पश्चिमी काव्यपरंपराओं को शमशेर ने आत्मसात् किया हुआ था। उनके गहरे प्रभाव शमशेर की कविता पर हैं। पर वे प्रभाव अलग से नहीं हैं बल्कि कविताओं

में रचे-बसे हुए हैं। उर्दू-फारसी परंपरा की ग़ज़ल, मर्सिया, नज़्म आदि सभी विधाओं का उपयोग शमशेर ने किया था। यहाँ तक कि उनकी छन्दमुक्त कविताएं भी कभी-कभी ग़ज़ल का लुत्फ़ देती हैं।

संगीत का गहन असर शमशेर की कविताओं पर है। वे अपनी कविताओं से संगीत की उदात्त भूमि पर पहुंचना चाहते हैं। वहाँ पहुँचकर शब्द भी शब्द नहीं रह जाते बल्कि लय हो जाते हैं। उनकी कविताओं में शब्दों के बीच तथा पंक्तियों के बीच जो थोड़ा सा स्पेस है वह हमें अनंत स्पेस की अनुभूति कराता है। कई बार तो शब्द भी जैसे टूट-टूट जाते हैं। लेकिन ऐसा होने पर भी कविता का भाव कहीं-से टूटता विखरता नहीं। वह अटूट है। अपनी शमशेरियत के रंग में डूबा हुआ। "फिर एक ही जन्म में और क्या-व/चाहिए!"[16]

सन्दर्भ

1. बात बोलेगी पर कब ? मलयज से बातचीत, सापेक्ष शमशेर अंक पृष्ठ 49

2. वक्तव्य, दूसरा सप्तक, पृष्ठ 7

3. शमशेर मेरी दृष्टि में, मुक्तिबोध, शमशेर, पृष्ठ 12

4. सौन्दर्य, प्रतिनिधि कविताएं पृष्ठ 147

5. पिकासोई कला, इतने पास अपने, पृष्ठ 23

6. शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट, डॉ. विजयदेव नारायण साही, शमशेर, पृष्ठ 25

7. वही, पृष्ठ 27

8. वक्तव्य, दूसरा सप्तक, पृष्ठ 87

9. शमशेर मेरी दृष्टि में, मुक्तिबोध, शमशेर पृष्ठ 12

10. बात बोलेगी पर कब ? मलयज से बातचीत, सापेक्ष शमशेर अंक पृष्ठ 55

11. प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 20

12. शमशेर मेरी दृष्टि में, मुक्तिबोध, शमशेर, पृष्ठ 12

13. सौंदर्य, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 132

14. शमशेर मेरी दृष्टि में, मुक्तिबोध पृष्ठ 12

15. एक नीला दरिया बरस रहा है, चुका भी हूँ नहीं मैं, पृष्ठ 9

16. इतने पास अपने, पृष्ठ 20

अध्याय : 3

कला : संधान

क. कला-संधान : एक निरंतर प्रक्रिया

ख. कविता में शब्द की सत्ता का इस्तेमाल

ग. शब्दार्थ की अन्तर्ध्वनियाँ और कलात्मक संधान की विभिन्न प्रक्रियायें

घ. शब्दार्थ और शब्द की लयात्मकता के विभिन्न प्रयोग

ङ. रंगों और रेखाओं की परिणतियाँ

क. कला संधान : एक निरन्तर प्रक्रिया

To Sum up : aesthetic theory is the theory not of beauty but of art.[1]

सौन्दर्यानुभव एक स्वायत्त प्रक्रिया है। उसकी उत्पत्ति भीतर से होती है, बाहर से नहीं। बाह्य जगत निरन्तर गतिमान है। उसमें सौन्दर्य देख पाने की क्षमता हमारे भीतर होनी चाहिए। यह क्षमता कलाकार को अर्जित करनी पड़ती है। सौन्दर्य बाह्य वस्तु में नहीं बल्कि उसको देखने की हमारी दृष्टि में है। यह दृष्टि परम्परा के पाठ से तो मिलती ही है लेकिन उसका बड़ा हिस्सा कलाकार अपनी अभिव्यक्ति के संघर्ष में हासिल कर पाता है। परम्परा को आत्मसात् कर लेने तथा अभिव्यक्ति के इस संघर्ष ने ही शमशेर को वह दृष्टि दी है जहाँ वे कहते हैं "कि हर चीज में मुझे एक अंतःसौन्दर्य दिखाई देता है, बिना किसी अतिरिक्त कांशस प्रयत्न के, सौन्दर्य का पूरा एक कम्पोजीशन...."[2] यानि कि सौन्दर्यानुभव यहाँ पूरी तरह स्वायत्त है। बाह्य वस्तुओं का तनिक भी दखल उसे मंजूर नहीं। समस्या तब उठती है जब इस सौन्दर्यानुभव की अभिव्यक्ति का अवसर आता है। चाहे कविता हो, चाहे अन्य कोई कला माध्यम, अभिव्यक्ति के सारे औजार इस बाह्य में हैं। यह बाह्य जगत् सौन्दर्यानुभव की उस स्वायत्ता को परिसीमित करता है। उसे पार्थिवता के धरातल पर लाता है। कलाकार की समस्या यहाँ से बढ़ जाती है क्योंकि यह बाह्य सौन्दर्यानुभव की स्वायत्तता में दखल तो देता ही है अक्सर उसे एकदम से बदल डालता है। यानि कि सौन्दर्य अनुभव के स्तर पर तो स्वायत्त है किन्तु अभिव्यक्ति के स्तर पर कलात्मक क्षमता पर निर्भर है। कलाकार का सारा संघर्ष इस कलात्मक क्षमता को हासिल कर लेने का है। अभिव्यक्ति की अभिनव कोटियों का सतत् संधान उसकी दृष्टि और क्षमता दोनों को समृद्ध

करता है। किसी भी संवेदनशील कलाकार के लिए यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। मुक्तिबोध के अनुसार कला संधान की इस प्रक्रिया के तीन क्षण होते हैं- "कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभवक्षण। दूसरा क्षण है, इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक ऐसी फैण्टैसी का रूप धारण कर लेना मानों वह फैण्टैसी अपनी आंखों के सामने ही खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है, उस फैण्टैसी के शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता। शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर जो प्रवाह बहता रहता है वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह होता है। प्रवाह में वह फैण्टैसी अनवरत रूप से विकसित परिवर्तित होती हुई आगे बढ़ती जाती है। इस प्रकार वह फैण्टैसी अपने मूल रूप का बहुत कुछ त्यागती हुई नवीन रूप धारण करती है। जिस फैण्टेसी को शब्द-बद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है वह फैण्टेसी अपने मूल रूप से इतनी अधिक दूर चली जाती है कि यह कहना कठिन है कि फैण्टेसी का यह नया रूप अपने मूल रूप की प्रतिकृति है। फैण्टेसी को शब्द-बद्ध करने की प्रक्रिया के दौरान जो-जो सृजन होता है- जिसके कारण कृति क्रमशः विकसित होती जाती है- वहीं कला का तीसरा और अन्तिम क्षण है। प्रथम क्षण निस्सन्देह अनुभव का क्षण है। उसके बिना आवेग और आगे की गति असम्भव है। मानसिक प्रक्रिया को आत्माभिव्यक्ति की ओर ले जाने के लिए आवश्यक पहला जबरदस्त धक्का यह प्रथम क्षण ही देता है। वह उस गति की दिशा निर्धारित करता है। साथ ही, वह उसके तत्त्व रूपायित करता है अर्थात् वह उनको एक आकार प्रदान करता है। साथ ही मजा यह है कि यह अनुभव विचित्र रूप से अन्य मनस्तत्वों से जुड़ता हुआ मनस्पटल पर स्वयं को प्रक्षेपित कर स्वयं

ही बदल जाता है। ज्यों ही यह घटना होती है अनुभव के मूल अपनी दुखती हुई भूमि से पृथक हो जाते हैं। अर्थात् वे निरे वैयक्तिक न रहकर अपने से परे हो उठते हैं। जो फैण्टेसी अनुभव की व्यक्तिगत पीड़ा से पृथक होकर अर्थात् उनसे तटस्थ होकर अनुभव के भीतर की ही संवेदनाओं द्वारा उत्सर्जित और प्रक्षेपित होगी, वह एक अर्थ में वैयक्तिक होते हुए भी दूसरे अर्थों में नितान्त निर्वैयक्तिक होगी। उस फैण्टेसी में अब एक भावात्मक उद्देश्य की संगति आ जायेगी। इस भावात्मक उद्देश्य के द्वारा ही वस्तुतः फैण्टेसी को रूप-रंग मिलेगा। किन्तु यह होते हुए भी वह फैण्टेसी यथार्थ में भोगे गए वास्तविक अनुभव की प्रतिकृति नहीं हो सकती। वैयक्तिक से निर्वैयक्तिक होने के दौरान ही उस फैण्टेसी ने कुछ ऐसा नवीन ग्रहण कर लिया कि जिससे वह स्वयं भी वास्तविक अनुभव से स्वतंत्र बन बैठी। फैण्टेसी अनुभव की कन्या है और उस कन्या का अपना स्वतंत्र विकासमान व्यक्तित्व है। वह अनुभव से प्रसूत है इसलिए वह उससे स्वतंत्र है।

'कला का यह दूसरा क्षण है।'..........किन्तु इस फैण्टेसी को शब्द-बद्ध करने या चित्रित करने की प्रक्रिया के दौरान में ही वह फैण्टेसी पिघलकर उस प्रक्रिया के प्रवाह में बहने लगती है। उस आदिम प्रवाह में फेण्टेसी के सारे रंग घुलकर बहने लगते हैं; सारा व्यक्तित्व और उसकी समस्त चेतना उस फैण्टेसी के बहते रंगों के साथ बहने लगती हैं और शब्द-बद्ध होने पर अथवा चित्रित होने पर जो कृति या रचना तैयार होती है, वह कृति या रचना कला के दूसरे क्षण की फैण्टेसी की पुत्री है, प्रतिकृति नहीं। इसीलिए मूल फैण्टेसी से उसका व्यक्तित्व स्वतंत्र, विचित्र और पृथक् है। कला का यह तीसरा या अन्तिम क्षण है। इन तीन क्षणों के बिना कला असंभव है।"[3]

इसका अर्थ हुआ कि सौन्दर्यानुभव का गहरा सम्बन्ध सृजन की प्रक्रिया से है। यह सृजन प्रक्रिया कलाकार की साधना पर निर्भर है। कलाकार अपनी कला साधना और कल्पनाशक्ति के सहारे अपने संवेदित अनुभवों का विस्तार करता है। शमशेर के संदर्भ में यह कला साधना, कला का निरंतर संधान है। कला का यह निरंतर संधान की उनके एस्थेटिक एक्सपीरियेन्स का मर्म है। अपनी प्रत्येक अभिव्यक्ति के साथ ही उनकी यह रचनात्मक बेचैनी और गहरी होती जाती है कि कुछ रह गया जिसका मर्म पकड़ में नहीं आया। उनकी यह रचनात्मक बेचैनी उनसे नित नए प्रयोग करवाती है। प्रयोगवाद को 'नर्वस ब्रेकडाउन' का आर्ट मानने के बावजूद शमशेर अपने कई समकालीनों की तुलना में अधिक प्रयोगशील हैं। शायद उनका परहेज 'वाद' से है। उनकी प्रसिद्ध कविता है 'चीन देश का नाम'। इस कविता को पढ़कर डॉ. विजयदेव नारायण साही ने निष्कर्ष निकाला था कि "सिर्फ कविताएं सुनकर यह कल्पना करना लगभग असंभव है कि पहली कविता का शीर्षक 'चीन' है और वह 'चीनी जनता का लोकसत्तात्मक गणतंत्र राज्य' के चीनी अक्षरों को चित्र पहेली की तरह इस्तेमाल करके रची गयी है, और दूसरी कविता का शीर्षक 'सौन्दर्य' है। सच तो यह है कि शमशेर की सारी कविताएं यदि शीर्षक हीन छपें, या उन सबका एक ही शीर्षक हो, सौन्दर्य, शुद्ध सौंदर्य तो कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।"[4]

इस निष्कर्ष को स्वीकार करने के अपने खतरे हैं। शमशेर इसको समझते थे। मलयज से बातचीत करते हुए उन्होंने कहा था- "काव्य की कुछ उपलब्धियाँ निगेटिव मूल्य के रूप में होती हैं, समझ लो कि यह बरबस सौन्दर्य के एक खाके में अपने को अनायास महसूस कर लेना मेरी कविता की वही निगेटिव उपलब्धि है।"[5] शमशेर का वक्तव्य उनकी विनम्रता तो है ही किन्तु साथ

ही उनके काव्य व्यक्तित्व में बद्धमूल उस द्वन्द्व की तरफ इशारा भी है जिसे उनकी विचारधारा ने पैदा किया है। एक तरफ दृश्यजगत को बरबस सौन्दर्य के एक खाके में देख लेने का कलात्मक परिष्कार और दूसरी तरफ सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक अभावों और यथार्थ की जटिलताओं का भारी दबाव। शमशेर अपने तरीकेसे इस द्वन्द्व से निपटने का प्रयास करते हैं। डॉ. रघुवंश ने सही लक्ष्य किया है कि 'शमशेर की अपनी विशेषता है कि वह बड़ी सरलता से सहज ही अपनी व्यक्तिनिष्ठता के साथ सामाजिक दायित्व को समायोजित कर लेते हैं और अपनी शुद्ध कवितावादी दृष्टि के कारण दोनों स्थितियों के सामंजस्य या सन्तुलन की अपेक्षा भी उन्हें नहीं होती..........। वह स्वयं सारा भार प्रतिभा, शक्ति और सामर्थ्य पर डालकर श्रेष्ठ काव्य की दुहाई देते हुए अलग हो जाते हैं।....... उनमें 'समाज-सत्य के मर्म को ढालना', 'सामाजिक दायित्व के पक्ष में उत्कृष्ट रहेटारिक या महान छन्दोबद्ध जोशीली पत्रकारिता को श्रेष्ठ काव्य का रूप मानना', 'कविता में सामाजिक अनुभूति को काव्य पक्ष में ही महत्वपूर्ण स्वीकारना' और फिर अपनी गजलों के समर्थन में अपनी असाधारणता के दावे को पेश न करने की विनम्रता- सब एक साथ उपस्थित होकर आकर्षक हो उठे हैं। वास्तव में यह शुद्ध कवि-दृष्टि का ऐन्द्रजालिक प्रभाव है, जो हमको अभिभूत करती है।"[6]

कवि दृष्टि का यह ऐन्द्रजालिक प्रभाव उस सौन्दर्यचेतना का परिणाम है जहाँ शमशेर "कह सकते हैं कि एक चित्रकार तान लेता है, एक गायक चित्रण करता है, एक कवि मूर्ति और मंदिर बनाता है।"[7] अन्यान्य कलामाध्यमों का सृजनात्मक इस्तेमाल शमशेर की कला साधना को अधिक समृद्ध बनाता है। उनकी प्रयोगशील सौन्दर्य चेतना इनसे लाभ उठाकर अपनी

अभिव्यक्ति को और भी अधिक सक्षम बनाती हैं। शमशेर की कविता है 'एक मुद्रा से'-

\- सुन्दर !

उठाओ

निज वक्ष

और-कस-उभर!

क्यारी

भरी गेंदा की

स्वर्णारक्त

क्यारी भरी गेंदा की :

तन पर

खिली सारी-

अति सुन्दर! उठाओ.!

स्वप्न-जड़ित-मुद्रामयि

शिथिल करुण!

हरो मोह-ताप, समुद

स्मर-उर वरः

हरो मोह-ताप-

और और कस उभर!

सुन्दर ! उठाओ! [8]

नारी सौन्दर्य का जो स्थापत्य भारतीय परम्परा में मिलता है उसका सुन्दर दर्शन इस कविता में हम करते हैं। यहाँ कविता अनुभव करने की नहीं वरन् देखने की वस्तु बन गयी है। शब्दों के माध्यम से सौन्दर्य का चाक्षुष पान। यह क्षमता किसी मामूली कलाकार के बूते की बात

नहीं होती। शमशेर ने यह क्षमता निरन्तर कला संधान से अर्जित किया है। 'रेडियो पर योरोपीय संगीत सुनकर या 'पिकासोई कला' ऐसी अन्य कविताएं हैं जहाँ कवि के साथ हम भी योरोपीय संगीत के तरन्नुम से- डूब जाते हैं, या 'जीवन की तुला में प्राणों का संयमन' जैसी पिकासोई कला का अपरोक्ष साक्षात्कार करते हैं।

शमशेर ने कला माध्यमों के साथ-साथ भाषा और शैली के स्तर पर भी नये संधान किये हैं। हिन्दी, उर्दू काव्य की विभिन्न शैलियों से लेकर अंग्रेजी के मुक्तक, सानेट आदि छन्दों का भी उन्होंने बराबर व्यवहार किया है। कोई भी माध्यम जहाँ नवीनता या मौलिकता दीखी हो उन्हें अपनी तरफ खींचती हैं। 'मणिपुरी काव्य साहित्य की एक विहंगम नन्हीं सी झांकी' कविता बकौल शमशेर "कुछ नितान्त अजनबी किन्तु आकर्षक शब्दों के मात्र उच्चारण- सुख के लिए ये मुक्तपद लिखे गये।"[9]

कला संधान शमशेर के लिए निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। उनके यहाँ सौन्दर्यानुभव सृजन प्रक्रिया से अनिवार्य रूप से सम्बद्ध है। इस सौन्दर्यानुभव को अभिव्यक्त करने के लिए अपनी सृजन प्रक्रिया में कवि नित् नये माध्यमों की खोज करता है। उसकी यह खोज हमेशा अधूरी रहती है। ऐसा होने के लिए कलाकार अभिशप्त होता है। उस अधूरे या न कुछ को पाने का वह फिर-फिर प्रयत्न करता है। अपने इस आंतरिक अभाव और बेचैनी की पूर्ति वह कला के निरंतर संधान से करता है। टी. एस. इलियट की पंक्तियां हैं :-

Because I cannot drink

There where trees, flowers and springs flood,

for there is nothing again,

Becuse I cannot hope to turn again,

Consequently I rejoice, havin I to construct

something upon which to rejoice.[10]

यहाँ निर्माण या सृजन इसलिए है कि उसके आधार पर आनन्दित हुआ जा सके। क्योंकि कुछ भी दुबारा नहीं होता। क्योंकि कवि दुबारा लौटने की आशा नहीं करता। शमशेर भी कहते हैं- "पर मैं तो जैसे इसी शरीर से अमर हूँ"। यह कला के सौन्दर्य क्षण की अमरता है जहाँ दुबारा जन्म नहीं होता। इसीलिए शमशेर लिखते हैं-

लौट आ ओ धार

टूट मत ओ साँझ के पत्थर

हृदय पर

(मैं समय की एक लंबी आह

मौन लंबी आह)

लौट आ, ओ फूल की पंखड़ी

फिर

फूल में लग जा

चूमता है धूल का फूल

कोई, हाय।[11]

सन्दर्भ :

1. The Principles of Art, R. G. Collingwood page 41.

2. बात बोलेगी पर कब ? मलयज से बातचीत, सापेक्ष शमशेर अंक, पृष्ठ 49

3. कला के तीन क्षण, एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध

4. शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट, डॉ. विजयदेव नारायण साही, शमशेर, पृष्ठ 25

5. बात बोलेगी पर कब ? मलयज से बातचीत, सापेक्ष शमशेर अंक, पृष्ठ49

6. शमशेर : एक ऐंद्रजालिक कवि- डॉ. रघुवंश, शमशेर, पृष्ठ 69

7. अमूर्त कला, कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 165

8. एक मुद्रा से' कुछ और कविताएं, पृष्ठ 138

9. मणिपुरी काव्य की एक विहंगम नन्हीं सी झांकी, काल तुझसे होड़ है मेरी पृष्ठ 85

10. T. S. Eliot, Selected poems.

11. लौट आ, ओ धार, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 130

ख. कविता में शब्द की सत्ता का इस्तेमाल

"My dear Degas, one does not make poetry with ideas, but with words."[1]

मलार्मे ने अपने चित्रकार मित्र देगास से यह बात कही थी जिसे वह अक्सर दुहराया करता था। काव्य भाषा की कला है। भाषा शब्दों से बनती है। भाषा एक व्यावहारिक सर्जना है। यह लोगों के आपसी संवाद से बनती है। और ये संवाद अक्सर व्यावहारिक रोजमर्रा के क्रियाकलापों से उपजे होते हैं। इसलिए भाषा की निर्मित लोगों की इस आपसी बातचीत और भंगिमाओं से होती है। सच्चा कवि इसी जनभाषा और भंगिमाओं को साधने की कोशिश करता है। यहीं से उसे वे शब्द और वाक्य मिलते हैं जो उसकी अनुभूति के रंग में ढलकर चमक उठते हैं। यह चमक और तेजी कवि की भाषिक समृद्धि पर निर्भर करती हैं। इसीलिए कहा जाता है कि कविता शब्द की साधना है। शब्दों की साधना से यहां तात्पर्य शब्दों के उचित प्रयोग से है। उनकी मितव्ययिता से है। शमशेर शब्दों की स्फीति के नहीं बल्कि मितव्ययिता के कवि हैं। उनका विश्वास "अरथ अमित अति आखर थोरे' में है। यह साधना उन्होंने कठिन परिश्रम से अर्जित की है। उनका विश्वास है-

बात बोलेगी

हम नहीं

भेद खोलेगी

बात ही[2]

अभिव्यक्ति में शब्दों की अर्थ परम्परा का गहरा महत्व होता हैं इसलिए अभिव्यक्ति में जहां तक संभव हो सके कम से कम और नितान्त आवश्यक शब्द ही होने चाहिए। इसके साथ ही बात कहने का स्वाभाविक लहजा भी होना चाहिए। इसके अभाव में अभिव्यक्ति कृत्रिम हो जाने का खतरा बना रहता है। शमशेर इस फन के उस्ताद हैं। उनका विश्वास है कि-

शब्द का परिष्कार

स्वयं दिशा है[3]

काव्य प्रतिभा की मौलिकता बिना शब्द के परिष्कार के अधूरी है। कविता शब्दों में संभव होती है। इसलिए शब्द का परिष्कार भी कविता की सृजन प्रक्रिया का आवश्यक अंग है। किन्तु कविता केवल शब्दों के इस्तेमाल से नहीं बल्कि उनके क्रम से निर्मित होती है। शब्दों का महत्व उनकी आपसी टकराहट में होता है। कविता में प्रत्येक शब्द एक-दूसरे के पास रख देने से उनका अर्थ कैसा ध्वनित या झंकृत होता है, यह उनकी आपसी रगड़ से पता चलता है। अर्थात् कविता में अभिधात्मक नहीं बल्कि व्यंजनात्मक अर्थ ही अभिप्रेत है।

शमशेर भाषा के रचाव पर नहीं बल्कि उसके नैसर्गिक होने पर बल देते हैं। अपने एक इंटरव्यू में उन्होंने कहा था- "कम कविताएं हैं अपेक्षाकृत कि जिनको मैंने, यों कहिए कि जिनके लिए, भाषा के साथ संघर्ष करना पड़ा, यानि किया है मैंने। वह अपनी ही भाषा अपने ढंग से लेकर

आयेगी और दे विल कम इन ए फ्लैश। वे लम्बी हों; या टूटी हुई विखरी हुई हों। सब एक रौ में, जैसें कोई डायरी लिखता है। जैसे- यह नीला दरिया बरस रहा है' एक रौ में लिखी हुई है।''[4]

शमशेर की भाषा नैसर्गिक है क्योंकि उनके यहाँ-

मगर

मेरी पसली में है- गिन लो

व्यंजन : और उनके बीच में है

स्वर[5]

यहाँ आँख है जो कि 'अँखुआए हुए उपज आयी हो बहुत ही करीब बहुत ही करीब। उन्हें वह पैमाना चाहिए जो फोनिमिक्स पश्चिम और पूरब की भाषाओं की मिलन सीमा को आगनित करती है।

भाषा ध्वनि भी हैं। भाषा में शब्दों के अनुशासित इस्तेमाल से उसमें नाद सौन्दर्य उत्पन्न होता है। शमशेर भाषा को उसके प्रत्येक शेड में पकड़ना चाहते हैं। भाषा की चित्रात्मकता और उसकी ध्वनि उन्हें विशेष आकर्षित करते हैं। चित्रात्मकता तो भाषा की लिपि के उदय के साथ ही उसके साथ जुड़ी हुई है। अक्षरों का विकास चित्रलिपियों से ही हुआ है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण चीनी भाषा की लिपि है। भाषा के इस चित्रात्मक सौन्दर्य का काव्य में कैसा प्रयोग किया जा सकता है इसे देखने के लिए उनकी 'चीन' कविता का उदाहरण सामने है। एक इंटरव्यू में उन्होंने कहा था ''....मैं बहुत प्रभावित हुआ। मैंने सोचा हमें कम से कम यह जानना चाहिए कि

चीनी लोग अपने देश को कैसे पुकारते हैं, यानी एक तरह से अपनी माँ को। यानी जैसे हम लोग कहते हैं- भारत। लिपि और उच्चारण दोनों। मूल बात मुझे यही कहनी थी कि दोनों देश एक हों। तो मैंने कोशिश की, कि मैं चीन देश के इन चीनी नामचिन्हों का मूल के अनुरूप ही अर्थ दूं......तो मैंने यह चिन्ह देखकर और अपनी कल्पना से.......वैसे मैंने इनके अर्थों की काफी हद तक रक्षा की है, केवल अन्तिम चिन्ह को छोड़कर........ कविता लिखी।.......पर मेरा मुख्य उद्देश्य वह संज्ञा अपने उच्चारण के साथ रखने का था।"[6] यद्यपि शमशेर जी का मानना था कि संज्ञाएं अपने उच्चारण के साथ ही होती हैं फिर भी 'चीन' कविता में उच्चारण से पहले लिपि की चित्रात्मकता हमारा ध्यान खींचती है-

मैंने

क्षितिज के बीचोबीच

खिला हुआ देखा

कितना बड़ा फूल!

देखकर

गंभीर शपथ की एक

तलवार सीधी अपने सीने पर

रखी और प्रण लिया

कि :

वह आकाश की माँग का फूल

जब तक मैं चूम न लूंगा

चैन से न बैठूंगा।

और महान संदेश लिए

दौड़ता हुआ संदेश वाहक हो जैसे-

मैं दौड़ा :[7]

'चीन' कविता में लिपि की इस चित्रात्मकता के जरिए शमशेर उस अमर सौन्दर्य के किसी इशारे को पकड़ने की कोशिश करते हैं। वह अमर सौंदर्य का इशारा शांति और भाईचारे का है। यह किसी भी रचना का मूल संदेश हो सकता है। इस महान संदेश को लेकर दौड़ता हुआ धावक प्राचीन ग्रीक के ओलंपिक मैदानों से निकलकर भागता हुआ हमारी चेतना में समा जाता है। बीच का सारा काल प्रवाह जैसे अनुपस्थित हो गया हो। महान संदेश शायद इतने ही शाश्वत होते हैं। इसी तरह भाषा की ध्वन्यामकता की तरफ भी शमशेर आकर्षित होते हैं। 'मणिपुरी काव्य साहित्य की एक विहंगम नन्हीं-सी झाँकी (एक प्रयोग) कविता सिर्फ भाषा के ध्वनि सौन्दर्य की तरफ आकर्षित होकर लिखी गयी है। "कुछ नितान्त अजनबी किन्तु आकर्षक शब्दों के मात्र उच्चारण सुखक लिये ये मुक्तपद लिखे गए।"[8] कविता के साथ दिये गये निवेदन में वह कहते हैं- "चार-पांच साल हुए, मणिपुरी साहित्य समिति के एक प्रचार पैम्पलेट ने मुझे कौतुक वश आकृष्ट किया। उसी से अकस्मात् प्रस्तुत प्रयोग के लिए प्रेरणा मिली। मेरे मन में सवाल उठा- क्या किसी नितान्त अपरिचित भाषा के संज्ञा-पदों को इस प्रकार मुक्त पदों में नहीं बाँधा जा सकता कि वे अपने ध्वन्यात्मक आकर्षण के साथ हमारे कानों में गूँजने लगें- और सम्भवतः फलस्वरूप, हम उनके मूल संदर्भों को जानने के लिए थोड़े-बहुत उत्सुक हो उठें ? मेरी सृजनात्मक कुलबुलाहट ने जवाब दिया : बेशक बाँधा जा सकता है : कोशिश कर देखते हैं?"[9]

शमशेर सिर्फ लिपि की चित्रात्मकता तथा भाषा की ध्वनि से ही आकृष्ट नहीं होते बल्कि वर्णमाला का सौन्दर्य भी उन्हें कुछ सीखने-सिखाने को आकृष्ट करता है। इसका उदाहरण उनकी 'यूनानी वर्णमाला का कोरस' कविता है। इस कविता में भी वे धर्मनिरपेक्षता तथा शान्ति की खोज अपने ढ़ंग से करते हैं।

शमशेर सिर्फ शब्दों के ही नहीं शब्दों के बीच के मौन के भी कवि हैं। शायद उनका लक्ष्य संगीत की वह पूर्णावस्था है जहाँ पहुँचकर 'बोल' लुप्त हो जाते हैं। डॉ. नामवर सिंह ने सही लक्ष्य किया है कि 'शमशेर शब्द से ही रंग का काम लेते हैं, पत्थर का भी और सुर का भी। विरोधाभास प्रतीत होते हुए भी यह सच है कि शमशेर भाषा के जादूगर भी हैं और भाषा के वैज्ञानिक भी। एक ओर वे जादूगर की तरह भाषा से इंद्रजाल रचते हैं तो दूसरी ओर एक वैज्ञानिक की तरह हर शब्द का नपा-तुला प्रयोग करते हैं। उन्होंने शब्द को उसकी आदिम जादुई शक्ति भी लौटाई और शब्द को छायावादी अनिश्चतार्थकता से मुक्ति भी दिलाई। शमशेर में 'सारांश जैसे रूप' और लीलाएं जैसी असंगतियां' साथ-साथ निवास करती हैं और इस प्रक्रिया में कभी-कभी अधूरा वाक्य अधर में ही लटकता रह जाता है। सिर्फ संयोग की बात नहीं कि शमशेर की अधिकांश कविताओं की परिणति 'मौन' में होती है और बीच-बीच में शब्द के स्थान पर खाली जगह तो अक्सर मिलती है।

.......भाषा की सरहदों को छू लेने की कोशिश वे जरूर करते रहे लेकिन सिर्फ उस विशिष्ट सच्चाई को ठीक-ठीक पकड़ने के लिये जिसे अपनी समझ से सिर्फ उन्होंने देखा था। कहना न होगा कि इस तरह शब्द के माध्यम से शमशेर ने कविता में एक अभिनव आश्चर्य लोक

अथवा सौन्दर्य लोक की सृष्टि की, जो आज भी अद्वितीय है, बल्कि समय के साथ उसकी कांति दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है।"[10]

शमशेर की कविता में अर्थ-अक्सर गलत या अपर्याप्त शब्द का चुनाव नहीं करता। स्वतःस्फूर्त बिम्ब का शब्दायन या वक्तव्य का संप्रेषण हो, शमशेर साधारणतः अपरिहार्य शब्द का ही चयन करते हैं। बेहद विनम्र और शांत ढंग से शब्द का अभूतपूर्व प्रयोग- शमशेर की अपनी विशेषता है।

बिम्ब की संश्लिष्टता और वांछित अर्थ के लिए अचूक शब्द की तलाश का उत्तेजक उदाहरण इन पंक्तियों में है-

एक नीला आईना
बेठोस-सी यह चाँदनी
और अन्दर चल रहा हूँ मैं
उसी के महातल के मौन में।
मौन में इतिहास का
कन किरन जीवित, एक बस।

एक पल के ओट में है कुल जहान।[11]

इस कविता में प्रयुक्त शब्द 'बेठोस' बरबस हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। चांदनी ठोस नहीं हो सकती। शमशेर उसके ठोस न होने पर ही बल देना चाहते हैं। यह विशेषता तरल होने से भिन्न कोमल या उज्ज्वल से भी अलग। इसलिये शमशेर सामान्य शब्द ठोस के पहले निषेध

का उपसर्ग लगाकर उसे चांदनी का पर्यायवाची बना देते हैं।

भाषा की इसी एडवेंचर वृत्ति और दायित्वबोध के कारण शमशेर की कविता रसिक से धैर्य बल्कि बकौल मलयज 'एक तरह के आदर भाव' की मांग करती है। क्योंकि शमशेर की कविता में "शब्द के कर्म और मर्म को अधीर त्वरा के साथ पकड़ने और पहचानने वाले अद्वितीय कवि शमशेर के यहां अन्दर पछाड़ खाता समुद्र है, तो बाहर प्रशान्त नीला दरिया। उनकी अनुभूतियों में आदिम उर्जा है, तो उनके काव्य कौशल में अत्यन्त आधुनिक परिष्कार। अंततः शमशेर की कविता के केन्द्र में है, आदमी, दो कुहनियों से पहाड़ों को ठेलता हुआ, पतझड़ के जरा अटके हुए पत्ते-सा, ताक पर अपने हिस्से की धरी होने पर बड़ी रात गए काम से लौटने पर शक करता हुआ, होली के भय, दीवाली और ईद-मुहर्रम के एक ही भांति के आतंक से त्रस्त, अन्तिम लोरियों के बजाय अंधेरे की तलवारों से जूझता हुआ, गंगा में कीचड़ की तरह सोता हुआ, बीती हुई होनी और अनहोनी की उदास रंगीनियों में फकत उलझा हुआ, शब्द के परिष्कार को स्वयं दिशा मानता हुआ, हृदय की सच्ची सुख-शान्ति का बहुत आदिम बहुत अभिनव राग गाता हुआ आदमी। शमशेर की कविता हमारे वक्त का जतन से सहेज कर रखा गया तिमसालदार आईना है वह आदमीनामा, जो व्यथा और हर्ष के साथ अनेक जीवन छवियों को लेकर अनेक रंगतों में लिखा गया है।"[12]

शमशेर सिर्फ़ के शब्दों के बीच के मुखर मौन के ही कवि नहीं हैं बल्कि अक्सर ही वे शब्दों के दुहराव-तिहराव और यहाँ तक की शब्दों की तोड़फोड़ से भी अपनी कविता में नयी अर्थछवियाँ भरने की कोशिश करते हैं। उनकी यह प्रयोग वृत्ति किसी वाद की वजह से नहीं है

बल्कि अपनी कला साधना और उसकी अभिव्यक्ति को और अधिक धारदार, पैना और मर्मस्पर्शी बनाने की उनकी कोशिश का एक अंग है।

संदर्भ :

1. Poetry, Language and Thought, Paul Valery, The Modern Tradition, Page 77
2. बात बोलेगी- प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 43
3. सारनाथ की शाम, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 130
4. मलयज और नेमिचंद्र जैन से बातचीत, पूर्वग्रह 12-13, पृष्ठ 20
5. नीला दरिया बरस रहा है, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ट 163
6. कवियों का कवि शमशेर, रजना अरगड़े से बाचीत
7. चीन देश का नाम, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 98
8. मणिपुरी काव्य की एक विहंगम नन्हीं सी झांकी, टूटी हुई बिखरी ई, पृष्ठ 49
9. वही

10. शमशेर, वह आखिरी मुलाकात, डॉ. नामवर सिंह, रविवारी जनसत्ता 23 मई 1993

11. एक नीला आईना बेठोस, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 107

12. भूमिका, टूटी हुई, बिखरी हुई, अशोक वाजपेयी

ग. शब्दार्थ की अन्र्त्ध्वनियाँ और कलात्मक संधान की विभिन्न प्रक्रियाएँ-

इन खाकों में कुछ है जो महज़ इशारे हैं। जिनमें व्यंजना की परोक्षता ही केवल व्यक्त हुई है। जैसे रेखागणित की शक्लें होती हैं। उनका शाब्दिक अर्थ कुछ भी नहीं है। मुमकिन है ऐसी कविताएं बहुत मुद्दत बाद 'समझ में आयें।'

मगर कुछ पाठकों के दिल को ये अपनी तरफ जरूर खीचेंगी, मुझे पूरा यकीन है।"[1]

[2]"इनके इस खिंचाव में ही इनकी कविता छिपी हुई है, शाब्दिक अर्थों में नहीं। शाब्दिक अर्थ सिर्फ़ इशारों के हलके पर्दे हैं। क्योंकि बाज़दफा हमें अपने जी का हाल सिर्फ़ इशारो की उलझी हुई दुनिया-सा लगता है। अक्सर नहीं पता लगता कि आखिर वह चाहता क्या होगा, वह अनमन सा क्यों है। उसके दुख या सुख या बेचैनी या खामोशी को, या खुशी या उम्मीद को, अगर मूर्त रूप में लगभग ज्यों का त्यों प्रकट किया जाय......उस तरह नहीं जिस तरह उपन्यास में कोशिश की जाती है, या जिस तरह संगीत की लय में, अलाप में हमको मिलती है।"[2]

"बल्कि-उपन्यास और संगीत-कुछ दोनों के गुण लेकर (ज़िंदगी के कुछ खास क्षण अक्स में आ ही जायेंगे) ऐसे शब्दों में उन्हें रख दिया जाय, जो अन्दर ही अन्दर उमड़ते-घुमड़ते हुए राग के बोल की तरह आप ही आप फूट पड़ते होंः जो कमल नाल की तरह चेतना की सतह को छूने के लिए ऊपर उभरकर आने को मजबूर हों और अपने प्राणों की ज़िद के साथ खिल पड़ते हों, और आप फौरन उन शब्दों को (जिस भी "लय" या "गति" या अपने "छन्द" में बंधकर वह आये हैं) उसी तरह रख देते हैं- तो इस रूप को आप कहाँ तक अपनी समझ से दूर समझेंगे?

और उसे अगर आप 'समझ लेंगे' तो क्या समझा भी सकेंगे?[3]

यह 'समझ लेने और समझा सकने का संकोच और दुविधा शमशेर की कविताओं के साथ शाश्वत रूप से जुड़ी हुई है। उनके यहाँ शब्द अन्दर ही अंदर उमड़ते-घुमड़ते हुए राग के बोल की तरह आप ही फूट पड़ते हैं। इन शब्दों को शमशेर जिस भी रूप में वे आते हैं उसी रूप में रख देने में अपनी कला की सार्थकता मानते हैं। शब्द और अर्थ की अर्न्तध्वनियां उनके यहाँ अपना रूप लेकर प्रकट होती हैं। शब्दार्थ उनके यहाँ सिर्फ़ इशारों के हल्के पर्दे हैं। इन इशारों को वे संगीत की लय और आलाप की तरह साधते हैं। इसका परिणाम होता है कि शब्दों का लोप सा होने लगता है। शब्दों के बीच का निर्वात् बढ़ने लगता है और कभी-कभी तो स्वयं शब्द भी टूटकर बिखर जाता है पूरे विन्यास में अपनी अर्थवत्ता की चमक को और भी तीव्र और मारक बनाते हुए-

अजब बेअदबी है ज़माने की– कि

कि

अक्स है   इंतिहाई गहरा

वही दरिया.......

और वो मुझे ले गया डुबा

जहाँ इंतिहाई गहराइयों के सिवा

                और कुछ न था

एक इंतिहाइयत........हाइयत

जो कि महज़ महज़   महज़

मैं हूँ– और

कुछ नहीं

यहाँ।[4]

शमशेर की असली समस्या शब्द और अर्थ की गूंजती अंर्तध्वनियों को सही रूप देने की है। शायद इसीलिए उन्होंने ग़ज़ल, मुक्तक, गीत, सानेट, दोहा और छायावादी, रोमैण्टिक, सुर्रिलिस्ट, प्रयोगवादी तथा प्रतीकवादी काव्य की रचना एकसाथ की है। 'कुछ और कविताएं' के अपने वक्तव्य में वे कहते हैं "मेरे कवि ने कभी किसी 'फ़ार्म', शैली या विषय का सीमा बन्धन स्वीकार नहीं किया। फैशन किन विषयों पर लिखने का है, कौन-सी शैली चल रही है, किस 'वाद' का युग आ गया है या चला गया है- मैंने कभी इसकी परवा नहीं की। जिस विषय पर जिस ढंग से लिखना मुझे रुचा, मन जिस रूप में भी रमा, भावनाओं ने उसे अपना लिया; अभिव्यक्ति अपनी ओर से सच्ची हो, यही मात्र मेरी कोशिश रही-"[5]

शमशेर अपने मन में घुमड़ते भावों को रूप देना चाहते हैं। उनकी कोशिश है कि यह भाव अपनी लय के साथ ज्यों का त्यों उनकी कविता में आये। इसमें ही वे अपनी अभिव्यक्ति का सच्चापन मानते हैं। उनकी असली खोज का मैदान कला-माध्यम है। इसके लिए उन्होंने पर्याप्त तैयारी की है। उनकी कला में पौर्वात्य और पाश्चाय कला माध्यम रचे-बसे हुये हैं। उर्दू और हिन्दी की रीतिकालीन कविता का उनके मानस पर गहरा असर है। उनके अंदर घुमड़ते हुए भाव इसीलिए अक्सर गजलों या कतओं के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। 'घनीभूत पीड़ा' कविता लिखते वक्त सबसे पहले उनके दिमाग में एक शेर आया और फिर पूरी कविता। इस कविता की रचना-प्रक्रिया पर बात करते हुए उन्होंने बताया था "अक्सर ऐसा ही होता है, कोई चीज जब

बहुत तक़लीफ़ देती रहती है तो पता नहीं क्यों वो छन्द-बद्ध होके और तुकों के साथ इस रूप में आ जाती है। इसके साथ भी यही हुआ। 'घनीभूत पीड़ा' का पहला शेर ये बनके आया जो मैंने लिखा-

जबाँदराजियाँ खुदी की रह गईं।
तेरी निगाहें कहना था सो कह गईं।

हमारी खुदी या हमारा अहम् जो है बहुत ज़बाँदराज था........अपने डिफेन्स में कुछ भी कह रहा था, वो सब एक तरफ रह गया, तेरी निगाहें कहना था सो कह गईं।''[5]

शमशेर के अंतर्मन में गूंजती हुई लय अपना रूप खुद लेके आती हैं। कलामाध्यमों पर उनका जबर्दस्त दखल है। उन्होंने परंपरा से और अपने अनुभव से काफी कुछ सीखा है। शमशेर ने अपनी गजलों में 'श्रृंगार, प्रेम, धर्म, देशप्रेम, मजदूरों की बात आदि को विषय बनाया है। उंन्होंने गज़ल का परम्परगत रूप ही ग्रहण किया है। वे मूलतः प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं किन्तु गज़लों में आम आदमी की तकलीफ़ों का भी बयान है-

''आज फिर देर से लौटा हूँ, बड़ी रात गए
ताक़ पर ही मेरे हिस्से की धरी है शायद।''[7]

या

जहाँ में अब तो जितने रोज अपना जीना होना है।
तुम्हारी चोटें होनी हैं हमारा सीना होना है।[8]

प्रेम और सौंदर्य को लेकर भी शमशेर ने गज़लें लिखी हैं। उनकी सादगी और काव्यसौंदर्य मीर तकी मीर की शायरी की याद दिला देता है।

हजार बार हम उसे चाहें कि अब न चाहें और

जो साँस-साँस में रम जाए वो तो क्यों कर हो[9]

या

मुस्कराते हुए वह आए, मेरी आँखों में

देखने क्या सरोसामान कज़ा का बांधा[10]

शमशेर ने अपनी गज़लों में उर्दू शब्दों और मुहावरों का प्रयोग किया है। उनके कथन की सादगी में व्यक्त होने वाला अर्थ अपने पूरे सौंदर्य के साथ उनकी गज़लों में मौजूद है।

शमशेर ने रुबाई और क़तआ भी लिखे हैं। रुबाई फारसी की विधा है। उमर खैय्याम की रुबाई बहुत प्रसिद्ध है। उनकी एक रुबाई प्रस्तुत है-

था बहते सदफ़ में बन्द यकता गौहर

ऐसी दुनिया में किसको तकता गौहर

दिल अपना जो देख सकता ठहरा है कहाँ

दरिया का सुकून देख सकता गौहर[11]

उन्होंने क़तआ विधा में भी रचना की है। लेकिन बहुत अल्पसंख्या में। उनके एक क़िता की कुछ पंक्तियां यहाँ पेश हैं-

आप भी किस हवा में हैं, शमशेर!

आप और शेर का यह कारोबार!!

माना, माना, माना कि शेरों-फने-लतीफ़

आप की जान हैं, मगर सरकार–

आपकी जान की है क्या कीमत!

आप जैसे पड़े हुए हैं हजार![12]

शमशेर की भावना ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए सॉनेट का माध्यम भी ढूंढा था। हालांकि शमशेर के लिखे कुल सॉनेट की संख्या पांच-छह से ज्यादा नहीं है किन्तु अपनी अभिव्यक्ति में वे सफल हैं। इन सानेटों में शमशेर ने केवल चौदह पंक्तियों का बन्धन निभाया है। उनका एक प्रसिद्ध सॉनेट है-

सानेट और त्रिलोचन : काठी दोनों की है
एक। कठिन प्राकार में बंधी सत्य सरलता।
साधे गहरी साँस सहज ही.........ऐसा लगता
जैसे पर्वत तोड़ रहा हो कोई निर्भय
सागर-तल में खड़ा अकेला; वज्र हृदयमय।
नैसर्गिक स्वर में जब ऐसी गूढ़ अगमता
स्वयं बोलती हो जो युग की वास्तविकता
को मानो ललकार रही हो, तब निःसंशय
अन्तस्तल खिल-खिल जाता; चट्टानें भीतर
दुखती-सी कसमस जीवन की:

-बढ़कर उन पर

सीधी चोट लगाऊँ, उनको ढाऊँ बरबस
डूबी हुई खान की निधियाँ अपनी सरबस
लाऊँ ऊपर!
अपने अंदर ऐसा ही प्रण

लिए हुए हैं शायद सानेट और त्रिलोचन।[13]

शमशेर ने गीत (लिरिक) की रचना भी की है। इनमें लय की प्रमुखता है। उनका प्रसिद्ध गीत है 'सावन की उनहार।'

सावन की उनहार

आँगन – पार।

मधु बरसे, हुन बरसे,

बरसे – स्वाति धार

आँगन पार।

सावन की उनहार – [14]

इस गीत की रचना-प्रक्रिया की चर्चा करते हुए शमशेर जी ने बताया था "यह गीत दरअसल गाते हुए लिखा गया था। इत्तफ़ाक से इसकी लय भी मेरे दिमाग में इस वक्त गूँज रही है।.......हुआ यह था कि मेरे सामने एक आईना रखा था बड़ा सा और वो मेरे ड्राइंग बोर्ड का काम दे रहा था। उस पर मैंने पानी से ड्राइंग पेपर चिपका के.........फिर कुछ रंग मैंने बनाये..........रंग बना लिये थे, चटख रंग और मैं एक तस्वीर बनाना चाहता था। कल्पना यह थी कि उसमें कि पहाड़ों के सिलसिले हैं.........सामने एक पहाड़ है जिस पर कुछ जंगल है। पीछे जो पहाड़ है वो ज़रा दूर-दूर पर हैं। तो ये पहाड़ वैसे तो पहाड़ों जैसे थे, लेकिन एक पहाड़ खालिस सोने का था, एक पहाड़ खालिस हीरे का, एक उसका था..........क्या कहते हैं........लाल पत्थर का। और इस तरह से ये पहाड़ थे। कह लीजिये कि एक पर्वत प्रदेश-जादू

का पर्वत प्रदेश था। और वहाँ वर्षा भी होती थी। वर्षा रिमझिम हो रही थी। जो रिमझिम का रंग था वो दूधिया-दूधिया जैसा था। बूंदें गिर रही थीं और एक सिलसिला.........उनकी हलकी-हलकी झड़ी लगी हुई थीं। तो वो बन गयाः घन बरसे, हुन बरसे,- स्वाति धार! मेरा ख्याल है कि ये घंटे भर डेढ़ घंटे तक, जब तक मैं बनाता रहा, चलता रहा- इसी तरीक़े से। बार-बार मैं रिपीट करता रहा। और चित्र बनते बनते मुझे बहुत अच्छा लगा। अफसोस है कि वो अब नहीं है, हलाँकि मैं उसको रखना चाहता था।........तो वो चित्र भी मुझे अभी तक हांन्ट करता है उसी तरह से और उसकी लय, उसकी तन्मयता भी मुझे हान्ट करती है। बाद में मुझे यह याद रहा और कुछ अरसे के बाद उसे शब्दों में लिख लिया, लिपिबद्ध कर लिया।''[15]

इस तरह एक चित्र बनते-बनते एक गीत की रचना हो गयी। शमशेर सौंदर्य की लय का संधान करना चाहते हैं चाहे वह जिस भी कला माध्यम में उन्हें पकड़ में आ जाये। कला माध्यमों का अंर्तसम्बन्ध उनकी कविता में एक अलग तरह का संगीत भरता है। संगीत की लय का शोध उनका चरम लक्ष्य है। इसे वे शब्दों में और उसके अर्थ में पाना चाहते हैं। यह एक कठिन प्रक्रिया है। किन्तु शमशेर की कलात्मक दक्षता उसे हासिल कर लेती हैं और अपने पाठक को वे अपने रंग में बहा ले जाने में सफल हो जाते हैं।

सन्दर्भ

1. उदिता : अभिव्यक्ति का संघर्ष, पृष्ठ 107
2. वही, पृष्ठ 108
3. वही
4. एक नीला दरिया बरस रहा है, चुका भी हूँ नहीं मैं, पृष्ठ 9
5. कुछ और कविताएँ, वक्तव्य, पृष्ठ 75
6. पूर्वग्रह 75, नामवर सिंह और अशोक वाजपेयी से बातचीत, पृष्ठ 3
7. सुकून की तलाश, पृष्ठ 103
8. सुकून की तलाश, पृष्ठ 29
9. सुकून की तलाश, पृष्ठ 27
10. वही, पृष्ठ 21
11. वही, पृष्ठ 51
12. वही, पृष्ठ 59
13. कुछ और कविताएँ, पृष्ठ 91
14. कुछ कविताएँ, पृष्ठ 60
15. पूर्वग्रह 75, नामवर सिंह और अशोक वाजपेयी से बातचीत पृष्ठ 5

घ. शब्दार्थ और शब्द की लयात्मकता के विभिन्न प्रयोग

शमशेर के मुताबिक, अन्दर ही अन्दर उमड़ते-घुमड़ते हुए राग के बोल की तरह आप ही आप फूट पड़ने वाले शब्दों की कला को समझ लेना और समझा भी सकना प्रारंभ से ही उनके कवि के लिए चुनौती बना हुआ है। प्रारम्भ से ही उन्होंने "अपनी बातों को खास अपने लहज़े में, खास अपने मन के रंग में, अपनी लय, अपने सुर में, खोलकर एक ख्वाब की तरह, एक उलझी हुई याद के बहुत अपने छाया चित्र की तरह, रखने की कोशिश"[1] शुरु कर दी थी। साथ ही उनको "यथासंभव निर्दोष शिल्प के उच्चतम स्तर"[2] पर कठोरता से आग्रह भी बराबर रहा है। इसलिए उनकी खाम-खयालियों को बांधने वाले "मौजू-छंदों" को "दिल की लहरें ही नाप सकती हैं।"[3]

ऐसे लयान्वेषी और शब्द शिल्पी होकर भी शमशेर अपने "कवि के चरित्र" को "आज का नया" नहीं, बल्कि "जरा पिछला" मानते हैं। परम्परा की विभूति को साँस की तरह "हृदय में भरकर" गीत गाना उनका आदर्श रहा है। इसलिए परम्परागत छंदों का अभ्यास भी उन्होंने गाहे-ब-गाहे कर लिया है। "उदिताः अभिव्यक्ति का संघर्ष" में उन्होंने हिन्दी उर्दू की कुछ प्रचलित लयों को अपनाने की कोशिश की है। उसकी अनेक कविताओं में सोलह मात्राओं की लय बंधी है। 'कवि कला का फूल हूँ मैं" कविता में विधाता की लय भी अच्छी तरह सध गयी है। शायद इसीलिए 'उषा', 'सागर-तट', 'एक पीली शाम' आदि में वही लय बार-बार उभरी है। गज़लों में उर्दू की बहरें अपनायी गयी हैं।

बंधी लय के ये गिने-चुने उदाहरण ही उनके यहाँ मिल सकते हैं। अक्सर तो उन्होंने भाषा की तरह, लयों को भी "अपने भावों के सांचे में ढाल"[4] लिया है। लय को भाव के अनुकूल ढालने की जो परम्परा हिन्दी में पन्त ने चलायी थी, उसे भाव-लय का नाम दिया गया है। इस भावलय के साथ निराला ने मुक्तछंद का प्रवर्त्तन किया। अपनी प्रारंभिक कविताओं में शमशेर ने इस भाव-लय को साधने की कोशिश की है। इसीलिए 'उदिता' की तमाम कविताओं पर छायावादी कवियों निराला और पंत की टेकनीक का प्रभाव है-

सहन् सहन् बहता है वायु

मुक्त उसासों का स्वर भर।

सम्हल-सम्हल कर झुकती डाल :

आकुल-उर तरु का मर्मर।

रह जाते हैं सिहर-सिहर

मृदु कलिका के विस्मित गात :

बहका फिरता मधुप अधीर,

तितली अस्थिर-गति अवदात।[5]

शमशेर की बाद की कविताओं में "पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश" की तरह तितली की अस्थिर गति अवदात नहीं रह जाती। वहाँ "तितलियाँ गोया चमन की फ़िज़ा में नश्तर लगाती हैं।"[6] यानि की भाव साधना और तदनुरूप लय-संधान दोनों ही परिष्कृत और संश्लिष्ट हो गयी हैं।

'आर्ट ऑफ रीडिंग' की दृष्टि से निराला ने मुक्तछंद की लय का आधार घनाक्षरी को माना था। घनाक्षरी के व्यंजनों का संगीत उन्हें पौरुषमय लगता था और स्वरों का संगीत स्त्री

रूप।[7] शमशेर ने भी भावुकता और ओजपूर्णता के आधार पर "मुक्तछंद के कवियों के दो रूप स्त्रैण और पौरूषमय"[8] स्वीकार किये हैं। निराला और पंत के काव्य-कौशल की तुलना करते हुए वे लिखते हैं : "कलाकारों में जहां छंद, गति और लय में' एक 'निराला' शुरु से अब तक अपनी मिसाल आप हैं, उसी तरह शब्दों के माधुर्य और कोमल सौंदर्य, साथ ही पूर्ण प्रकारात्मक न्यास तथा सुरुचिपूर्णता में पंत का अपना अकेला स्थान है।"[9] अतः शमशेर के लिए निराला मुक्तछंद की ओजपूर्ण लय के आदर्श थे। पंत की सुरुचिपूर्ण शब्द-माधुरी ने उन्हें मोहित किया है। उनके अनुसार "निराला जी का मुक्तछंद बहुधा स्वर-प्रधान होता है- अथवा स्वर का प्राधान्य ले उठता है। मात्रिक छंदों के प्रयोग में स्वर का महत्व वे कम नहीं होने देते, उनकी कविता में ओज का एक विशेष कारण यह भी है।"[10]

मुक्तंछद के बारे में 'परिमल की भूमिका' में निराला लिखते हैं "छंद भी जिस तरह कानून के अन्दर सीमा के सुख में आत्मविस्मृत हो सुन्दर नृत्य करते, उच्चारण की श्रृंखला रखते हुए श्रवण-माधुर्य के साथ-ही-साथ श्रोताओं को सीमा के आनन्द में भुला रखते हैं, उसी तरह मुक्त छंद भी अपनी विषम गति में एक ही साम्य का अपार सौंदर्य देता है, जैसे एक ही अनन्त महासमुद्र के हृदय की सब छोटी-बड़ी तरंगें हों, दूर प्रसरित दृष्टि में एकाकार, एक ही गति में उठती और गिरती हुई।"[11]

मुक्तछंद की विषम गति में 'एक ही साम्य' उसकी लयात्मकता है। इसी के संधान से उसमें अपार सौंदर्य की सृष्टि होती है। यह लय पूरी रचना में "हृदय की सब छोटी बड़ी तरंगों की" तरह एकाकार और एक ही गति" में उठती और गिरती हैं। जैसे कि हम साँसें ले रहे हों।

हमारी साँसों में समाई हुई लय :

मैंने शाम से पूछा–

या शाम ने मुझसे पूछा :

इन बातों का मतलब?

मैंने कहा–

शाम ने मुझसे कहा :

राग अपना है।

x x x x

उसने मुझसे पूछा, तुम्हारी कविताओं का क्या मतलब है ?

मैंने कहा– कुछ नहीं।

उसने पूछा– फिर तुम इन्हें क्यों लिखते हो?

मैंने कहा– ये लिख जाती हैं! तब

इनकी रक्षा कैसे हो जाती है?

उसने क्यों यह प्रश्न किया?

मैंनें पूछा :

मेरी रक्षा कहाँ होती है? मेरी साँस तो–

तुम्हारी कविताएं हैंः उसने कहा। पर–

इन साँसों की रक्षा कैसे होती आई?

वे साँसों में बंध गए; शायद ऐसे ही रक्षा

होती आई। फिर बहुत-से गीत

खो गए।[12]

जब से आधुनिक कविता ने छंद का बंधन तोड़ा है लय प्रधान हो गयी है। कवि अपने जीवन और परिवेश, अपनी सांसों की गति, हृदय की धड़कन, दिन-रात सबमें निहित लय की खोज करना चाहते हैं। हिन्दी कोश में लय के बारे में लिखा है- "लय की निष्पत्ति गति प्रवाह और यति, विराम के पारस्परिक एवं क्रमिक संघात से होती है। लय का स्वरूप तत्त्वतः आवृत्तिमूलक है तथा उसकी व्याप्ति दिक् और काल दोनों में है। संगीत और कविता में लय काल सापेक्ष रहती है और चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला में दिक् सापेक्ष इस प्रकार लय की व्याप्ति सभी ललित कलाओं में पायी जाती है। गायन, वादन और नृत्य, संगीत के इन तीनों अंगों को परस्पर सूत्रबद्ध करने वाली वस्तु लय ही है। काव्य में यह शब्द संगीत के क्षेत्र से ही आया प्रतीत होता है। संगीत शास्त्र में लय के तीन भेद मिलते हैं- (1) द्रुत, (2) मध्यम, (3) विलम्बित।

लय अमूर्त और स्वयम्भू होती है। लय की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी सम्भरण शक्ति (Power of integration) है, जिसके द्वारा वह विभिन्न तत्वों को संग्रथित करती हुई संश्लिष्टता प्रदान करती है। उसका एक और उल्लेखनीय गुण है अपने क्रमिक संस्पर्श से भावावेग को उद्दीप्त करने की क्षमता।

कला, काव्य और संगीत से ही नहीं, सामान्य जीवन में भी लयतत्व की घनिष्ठ व्याप्ति मिलती है। श्वास-प्रश्वास, हृदयगति, ऋतु-चक्र, दिन-रात आदि का अनुभव क्रमिक रूप में लयात्मकता के साथ ही होता है।"[13]

शमशेर ने इस शाश्वत लय को उसके अनेक छायावीथियों में पकड़ने की कोशिश की

है। उनका दृढ़ विश्वास है कि संसार की प्रत्येक वस्तु की अपनी एक निजी रिद्‌म है। इस रिद्‌म का संधान उन्हें अपनी काव्यवस्तु की खोज से ज्यादा महत्वपूर्ण लगता है। इसीलिए उनकी कुछ कविताओं में हो सकता है हमें कोई अर्थ न मिले किन्तु लय वहां अवश्य मौजूद होगी। उनकी एक कविता का उदाहरण-

गायें मैली, सफेद, काली, भूरी।

पत्थर ढुलके पड़े। पेड़ स्थिर नीरव।

दो पहाड़ियाँ धूम-विनिर्मित, पावन।[14]

इस कविता के विन्यास में शब्द भी पत्थरों की तरह ढुलके पड़े हैं। एक अजीब सी असम्बद्धता पूरी कविता में व्याप्त है। लेकिन इन सबमें एक लय है। वह सृष्टि की लय है। शमशेर ने इसका संधान कर लिया है। यह लय दिक् सापेक्ष है। 'काल-कालोपरि' नहीं है। यहाँ सीन बदल सकता है किन्तु लय नहीं। इसीलिए इस कविता को पढ़ते हुए हमें मंजीत बावा के चित्र अपनी आंखों में उतरते प्रतीत होते हैं। इस कविता में गति विलम्बित हैं। एक सूफियाना ठाठ सर्वत्र व्याप्त है। जो हमें भी भाव की उसी उच्च भूमि पर ले जाकर छोड़ देता है।

शमशेर की दृष्टि वस्तु पर नहीं लय पर टिकती है। उनके यहाँ सृष्टि की लयात्मकता ही सौंदर्य है। पल-पल बरसता हुआ सौंदर्य। अपने एक इंटरव्यू में वे कहते हैं' "हर चीज की अपनी एक रिद्‌म होती है। शुरु में यह मेरी बहुत कोशिश होती थी कि जिस चीज को मैं देख रहा हूँ.........और यह बात आई पेंटिंग की तरफ से, यानी लय या रिद्‌म जो है वो संगीत वाली पेंटिंग में भी होती है जो कविता में भी आती है। भावनाओं की भी एक लय होती है। इसमें

मैं एक मोटी सी मिसाल यह भी देता हूँ कि आप जितने पेड़ों को देखें, नीम का पेड़, बरगद के पेड़ को देखें, इमली का देखें और तमाम केले वगैरह.......हर एक कि रिद्म अलग-अलग है। जब हम उनका चित्रण कर रहे हैं तो जो उनकी खास अपनी रिद्म है, वो आनी चाहिए। जो बहुत बड़े कवि हैं इनके यहाँ अनायास वो आती है और हम महसूस करते हैं कि वो वस्तु स्वयं बोल रही हैं। इसी तरह शब्दों पर, उसकी लय पर और संगीत पर इसीलिए ध्यान जाता है कि वही-तो मेरे काम की है।''[15]

शमशेर शब्दों की लय और संगीत पर ध्यान देते हैं। वे अपनी काव्यभाषा की झंकृति से सिम्फनी की सृष्टि करना चाहते हैं। चाहे उनकी बाख के संगीत को सुनकर लिखी गई कविता हो चाहे 'घनीभूत पीड़ा' लक्ष्य उस सिम्फोनिक सौंदर्य की प्राप्ति ही है। 'घनीभूत पीड़ा' को तो उन्होंने सिम्फनी कहा भी है। इस कविता में लय की खोज तो है लेकिन उसकी अपूर्णता का साक्षात्कार भी है। इस अपूर्णता की भरपाई के लिए चित्रकला का सहारा लिया गया है। गहन भाव अपनी लय अपने साथ लेकर आया है। लेकिन कवि को तृप्ति नहीं है। इसलिए कविता के साथ चित्र भी देना जरूरी समझा है।

शमशेर ने शब्दार्थ और शब्द की लयात्मकता के साथ कई तरह के प्रयोग किये हैं। वे हमेशा उस लय को पाने की कोशिश करते रहे हैं जो उन्हें अभिव्यक्ति की पूर्णता का संतोष दे सके। उन्होंने चीजों को सीधे-सीधे तो ग्रहण किया ही है, कभी-कभी उनको गड्डमड्ड भी कर दिया है सिर्फ़ इस संश्लिष्ट स्थिति की लय प्राप्त करने के लिए। इसीलिए उनका-

"कवि घंघोल देता है

व्यक्तियों के जल

हिला-मिला देता

कई दर्पनों के जल

जिसका दर्शन हमें

शांत कर देता है

और गंभीर

अंत में।[16]

यह प्रशान्ति उस सूफियाना नीमहोशी से बहुत मिलती-जुलती है जो शमशेर की कविताओं में व्याप्त है। यह असीम और अनन्त की लय है। इसकी सिद्धि शमशेर करना चाहते हैं।

संदर्भ

1. उदिता : अभिव्यक्ति का संघर्ष, पृष्ठ 101

2. वही, पृष्ठ 103

3. वही, पृष्ठ 102

4. वही, पृष्ठ 105

5. उदिता : अभिव्यक्ति का संघर्ष, पृष्ठ 29

6. वह सलोना जिस्म, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 88

7. निराला और मुक्तछंद, पृष्ठ 72-73

8. दोआब, पृष्ठ 60-61

9. वही, पृष्ठ 39

10. वही, पृष्ठ59

11. परिमल की भूमिका, आधुनिक हिन्दी समीक्षा, पृष्ठ 61

12. राग, कुछ कविताएं, पृष्ठ 17

13. हिन्दी कोश, पृष्ठ 585

14. प्रतिनिधि कविताएं, गायें, पृष्ठ 39

15. पूर्वग्रह 75, नामवरजी और अशोक वाजपेयी से बातचीत पृष्ठ 6

16. प्रतिनिधि कविताएं, कवि घंघोल देता है, पृष्ठ 173

ङ. रंगों और रेखाओं की परिणतियाँ

"कला से एक तरह से हम inner soul of the artist's personality देख सकते हैं। शब्द-ध्वनि, रंग और रेखा द्वारा एक तरह से जीवन को ही देखते हैं। आन्तरिक जीवन को। I did painting entirely for my ownself's pleasure. The eagerness to painting is transformed into words-paintings."[1]

शमशेर की मनोवृत्ति मूलतः चित्रकार की है। उन्होंने अपने चित्रकार न बन पाने की कसर को कविता में पूरा करने की कोशिश की है। चित्रकार बनने के लिए उन्होंने बाकायदा प्रशिक्षण भी लिया था। उनका कवि चीजों को चित्र की शक्ल में पहले देखता है। उनकी कविता की चित्रमयता की बात अक्सर इसीलिए की जाती है। उनके यहाँ शब्दों के अपने रंग हैं। शब्द और अर्थ उनकी कविता में अपनी रंगत लेकर आते हैं। शब्द और वाक्य का प्रयोग वे चित्रकार की भाँति करते हैं। अक्सर उनकी कविताएँ हमारे सामने पेंटिंग्स के रूप में साकार होती हैं। उनकी कविताएं रूप, रस, गंध और स्पर्श के शब्द चित्र हैं। कविता और चित्रकला ये दोनों माध्यम उनकी चेतना में घुलकर एक हो जाते हैं। उनके भावों की लय उन्हें अपने में ढाल लेती हैं। वे शमशेर के 'राग' में ढल जाती हैं। 'एक नीला आईना बेठोस,' 'उषा', 'एक पीली शाम', 'सींग और नाखून', 'शिला का खून पीती थीं' आदि कविताएं विम्बों के एक अलग संसार की सर्जना है। इन बिंबों में कविता और चित्रकला आपस में घुलकर शमशेर की संवेदना के सांचे में ढल गई हैं। पिकासो के एक अलबम को देर तक उलटने-पलटने के बाद उन्होंने 'पिकासोई कला' पर कविता लिखी-

कला-आत्मरूप यहीं कूची कोयला पत्थर

अंगड़-खंगड़ चमड़ा चीनी मिट्टी।

हड्डी लकड़ी कागज कुछ भी कहीं भी

सकल वर्ग सर्ग में जो है

सब कुछ बनाकर दृष्टि एक

मार्मिक-इतिहास-भिदी अद्वितीय

अत्यधिक निजी अनुशासन की सीमा थी

सदा एक नए समय की गर्म सांस

अपनी-सी ही बहुत वह कला पिकासोई।[2]

शमशेर के यहाँ कला का अर्थ 'जीवन की तुला में प्राणों का संयमन' है। क्योंकि वे किसी भी कला को जीवन से बाहर नहीं देखते। उनके लिए जीवन ही सब कुछ है। कविता में भाव तथा रंग इसी जीवन से आयेंगे। शमशेर की प्रवृत्ति बिम्बों के चाक्षुष रूप को पकड़ने की रही है। मुक्तिबोध ने शमशेर को इसीलिए 'इम्प्रेशनिस्ट चित्रकार' कहा था। वे लिखते हैं "शमशेर की मूलवृत्ति एक इम्प्रेशनिस्ट चित्रकार की है। इम्प्रेशनिस्ट चित्रकार अपने चित्र में केवल उन अंशों को स्थान देगा जो उसके संवेदना-ज्ञान की दृष्टि से, प्रभावपूर्ण संकेत शक्ति रखते हैं। वह दृश्य चित्र में उन्हीं अंशों को स्थान देता है जो उसके संवेदनाज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण, अतः प्रगाढ़, प्रभावपूर्ण अंग है। केवल कुछ ही ब्रशेज में वह अपना काम करके दृश्य के शेष अंशों को दर्शक की कल्पना के भरोसे छोड़ देता है। दूसरे शब्दों में, इम्प्रेशनिस्ट चित्रकार, दृश्य के सर्वाधिक संवेदनाघात करने वाले अंशों को प्रस्तुत करेगा और वह मानकर चलेगा कि यदि वह संवेदनाघात दर्शक के हृदय में पहुँच गया तो दर्शक अचित्रित शेष अंशों को अपनी सृजनशील

कल्पना द्वारा भर लेगा।

तथ्य यह है कि शमशेर ने अपने हृदय में आसीन चित्रकार को पदच्युत कर उसके स्थान पर कवि को अधिष्ठित किया है। शमशेर वास्तविक भाव प्रसंग में उपस्थित संवेदनाओं का चित्रण करते हैं। वे लिखने को तो कविताएं लिखते हैं, लेकिन उनकी कविताएं धीरे-धीरे भावचित्रों का रूप ग्रहण करना प्रारंभ कर देती हैं। इसका कारण यह है कि पदच्युत चित्रकार के जिस सिंहासन पर कवि विराजमान है वह सिंहासन अपनी जादुई शक्ति से कवि को बाध्य करता है कि वह इम्प्रेशनिस्ट टेक़नीज और मनोवृत्ति अपनाए और इस प्रकार, इम्प्रेशनिस्ट चित्रकला के मूल नियमों को काव्यकला में गुप्त रूप से संस्थापित करे।"[3]

शमशेर का मानसिक अवबोध चित्रकार की टेक़नीक अपनाता है। एक चित्रकार की तरह वे अपने शब्दों में रंग भरते हैं। उनकी एक प्रसिद्ध कविता है 'होली : रंग और दिशाएँ'

जँगलें जालियाँ,

स्तंभ.

धूप के संगमर्मर के,

ठोस तम के।

कँटीले तार हैं

गुलाब बाड़ियाँ।[4]

यह कविता एक एब्सट्रैक्ट पेंटिंग के रूप में अपनी समग्रता में पूरी उतरती है। शमशेर की कविताओं में सूक्ष्म संवेदनाओं के बिखरे गुणचित्रों को बिम्ब का रूप दिया गया है। उनकी

कविता में "एक दरिया उमड़कर पीले गुलाबों का/चूमता है बादलों के झिलमिलाते स्वप्न जैसे पांव, 'उषा के जल में सूर्य का स्तंभ हिल रहा है।' शमशेर ने चूंकि अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए भाषा के अलावा शुद्ध रंगों व रेखाओं का भी सहारा लिया था, इसलिए भाषा और चित्रकला की अनुभूति और अभिव्यक्ति उनके यहाँ घुली-मिली है। वे सिर्फ कुछ ही शब्दों में हमारे सामने एक दृश्य उपस्थित कर देते हैं लेकिन उनका ध्यान उस दृश्यचित्र की लय पर ज्यादा संक्रेंदित रहता है अतः वह कविता हमारे मन में एक चाक्षुष बिम्ब की तरह उतरती है। उनकी एक कविता है-

एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता
पूरब से पश्चिम को एक कदम से नापता
बढ़ रहा है
कितनी ऊँची घासें चाँद-तारों को छूने-छूने को है
जिनसे घुटनों को निकालता वह बढ़ रहा है
अपनी शाम को सुबह से मिलाता हुआ
फिर क्यों
        दो बादलों के तार
उसे महज़ उलझा रहे हैं?[5]

कविता एक चाक्षुष बिम्ब के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। लेकिन शमशेर की कला इस भौतिक बिम्ब को भी अपार्थिवता के धरातल पर उठा ले जाती है। यहाँ बिम्ब 'कालोपरि' हो गया है। देश और काल दोनों में उलझा हुआ मगर दोनों से परे। यह काम एक बड़ा कलाकार ही कर सकता था।

'घनीभूत पीड़ा' कविता में शमशेर को अपने शब्द चित्रों से संतोष नहीं हुआ। उन्हें कविता के साथ रेखांकन देने की जरूरत भी महसूस हुई थी क्योंकि उनका उद्देश्य उस 'घनीभूत पीड़ा' की पूर्णतम अभिव्यक्ति का था। शमशेर अक्सर अपनी कविताओं में विभिन्न कला माध्यमों के बीच आवाजाही करते दिखाई पड़ते हैं।

शमशेर के चित्रकार होने का उनकी कविता पर यह प्रभाव पड़ा है कि उनकी कविता में गाढ़े चटख और कई बार मद्धिम और उदास रंगों वाले बिम्बों की संख्या अधिक है। उन्होंने संगीत के प्रभाव को भी चित्रों में ढालने की कोशिश की है। उनकी एक कविता है-

लुटी- मीठी बाँसुरी की धुन।
भूल सपनों की लिए बैठी
कौन चिलमन में
मौन रिमझिम की,
आँसुओं-लिपटी?
-फिर कहाँ वह मन-कली
ठुनकी, खिली, ठहरी, झुकी, मद-भार, अलसाई, गिरी,
खोई, कहीं सोई
मौन रिमझिम के
स्वप्न-चिलमन में
बाँसुरी की धुन-सरीखी
(सुनी-जानी दुखों की सखि-सी
आत्मा की

लुटी मीठी मौन ध्वनि सी)[6]

इस कविता में बाँसुरी की ध्वनि तरंगों के उतार-चढ़ाव को शब्दों में व्यंजित करने की कोशिश की गई है। इस कविता में नाद सौंदर्य के साथ चित्रमयता भी है जो हमारा ध्यान तुरंत आकृष्ट करता है। संगीत के प्रभाव की शब्दों के द्वारा चित्रमय प्रस्तुति इस कविता में की गई है। इसी तरह की उनकी एक अन्य कविता है 'रेडियो पर एक योरोपीय संगीत सुनकर'-

मैं

सुनूँगा तेरी आवाज़

पैरती बर्फ़ की सतह में तीर-सी

शबनम की रातों में

तारों की टूटती

गर्म

गर्म

शमशीर-सी-

तेरी आवाज

खाबों में घूमती-झूमती

आहों की एक तसवीर सी......[7]

इस कविता में भी ध्वनि तरंगों को शब्द में बांधने की कोशिश की गई है। इस कविता में आह सिर्फ़ भाव नहीं बल्कि एक तस्वीर की तरह है। यह 'आह' इस कविता में महसूस ही नहीं होती दिखती भी है।

असल में शमशेर दृश्य जगत की उस लय की खोज में हैं जो सर्वत्र विद्यमान है फिर भी हमसे कहीं खो जाती हैं। इसकी खोज में उनमें विभिन्न कला माध्यम घुलमिल जाते हैं। उनकी एक कविता है 'विजय सोनी के चित्र'-

....

और जहां मिलते हैं वह एक-

कैनवस है

जिसे हम छू नहीं सकते

क्योंकि उसे हम जी रहे हैं

यह एक माध्यम है

जिसे रंग मिल-मिल के पकड़ने के लिए

खोए जा रहे हैं

यहाँ जो कुछ ठोस है

वह धड़क रहा है

और जहाँ धड़कन है वहाँ

खामोशी है

दम साधे हुए।

आज की चीख़-पुकार में

एक बहुत कोमल तान

खो गई है।

उसे पाना है।[8]

शमशेर की कविता में रंगों और रेखाओं की परिणति उस बहुत कोमल तान को पा लेने में है जो खो गई है। इसी में उनकी कला की सार्थकता है।

संदर्भ

1. कवियों का कवि शमशेर, रंजना अरगड़े से बातचीत, पृष्ठ 225
2. पिकासोई कला, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 156
3. शमशेर : मेरी दृष्टि में, मुक्तिबोध, शमशेर, पृष्ठ 12
4. प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 124
5. वही, पृष्ठ 116
6. उदिता : अभिव्यक्ति का संघर्ष, पृष्ठ 77
7. कुछ कविताएं, पृष्ठ 6
8. इतने पास अपने, पृष्ठ 35

अध्याय : 4

हिन्दी और उर्दू का दोआब

हिन्दी और उर्दू का दोआब

मैं हिन्दी और उर्दू का दोआब हूँ।
मैं वह आईना हूँ, जिसमें आप हैं।[1]

शमशेर यहाँ सिर्फ़ दो भाषाओं के अद्वैत का ही स्वप्न नहीं देख रहे हैं बल्कि उन दो महान संस्कृतियों के मिलन का स्वप्न भी देख रहे हैं जो हजारों वर्षों के काल प्रवाह में घुलमिल कर एक हो गई हैं। इनमें से एक को भी हटा कर हमारी सच्ची तस्वीर नहीं बन सकती। हिन्दी और उर्दू की बातें शमशेर के लिए 'वो अपनों की बातें, वो अपनों की खू-बू' हैं। इसीलिए शमशेर हमारे लिए उस आईने की तरह हैं जिसमें हम अपनी सच्ची तस्वीर देख सकते हैं। यह आईना क्या हो सकते है इसे हम उनके 'दोआब' में संकलित निबन्ध 'मुसद्दस' और 'भारत-भारती' की सांस्कृतिक भूमिका' को पढ़कर जान सकते हैं। क्योंकि ये "दोनों मिलकर हमारी आज की जातिगत राष्ट्रीय भावनाओं की भूमिका प्रस्तुत करती हैं। दोनों में हमारी संस्कृति के मुख्य आधारों का परिचय देने का प्रयत्न किया गया हैं 'मुसद्दस' में मुस्लिम संस्कृति का, 'भारत भारती' में हिन्दू संस्कृति का'................ इन दोनों कविताओं में कवियों ने बहुत कठिन जिम्मेदारी अपने ऊपर ली और उसे शक्ति भर निभाया। उन्होंने लोकप्रिय काव्य-रूप में जातीय इतिहास का मूल्यांकन, 'वर्तमान' का सच्चा वर्णन, और भविष्य के लिए स्पष्ट कर्तव्य निर्देश हमें दिया।"[2]

शमशेर का मानना है कि हिन्दू तथा मुस्लिम संस्कृतियाँ हमारी साझा संस्कृति का मूलाधार हैं। इन आधारों की सच्ची खोज तथा मूल्यांकन हमारे युग की मांग है। इस युग की

व्याख्या करते हुये शमशेर जी ने उसी निबंध में लिखा था "आज फिर अनेक समस्याओं से गुंथने, उन्हें सुलझाने का संघर्षमय युग आ उपस्थित हुआ है; अब जातीय गौरव-गाथाएँ रण-भेरियाँ सी बन गयी हैं। सर्वजन-साधारण, मजदूर-किसान, विद्यार्थी, स्त्री-वर्ग, नेता, विचारक, लेखक, कलाकार- सभी समाजों, समूहों- धर्मों, जातियों, वर्गों के लोग, सभी अपने-अपने दृष्टिकोण से आज की अवस्था को समझने और समझाने में दिलचस्पी ले रहे हैं, अस्तु, आज दूसरे विश्वव्यापी महाभारत के बाद जब संयुक्त लोक-शक्ति फासिज़्म को अन्तिम नहीं, तो निर्णायक रूप से अवश्य ही हटा चुकी है; जब 'राष्टीयता' की विभिन्न परिभाषाएं देशविदेश में प्रचलित हैं; और स्वाधीनता, 'देश', 'जाति', 'धर्म', 'वर्ग', 'शासन', 'जन-अधिकार', आदि के वास्तविक रूप और उनकी यथार्थ सीमाएं अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुसार रोज-रोज निर्धारित और नियोजित होती हैं; और इस घनीभूत विषमता के विरोध में सभी देशों के दलित और अपहृत वर्ग संगठित मोर्चा बनाने लगे हैं, ऐसे समय में हमें क्या कुछ आवश्यकता नहीं है अपनी स्वस्थ परम्पराओं को उनके सच्चे रूप में समझने की, उनसे शक्ति, स्वास्थ्य और प्रेरणा लेने की; अपने भविष्य निर्माण में उनसे आवश्यक सहायता और योग प्राप्त करने की?[3] शमशेर 'मुसद्दस' तथा 'भारत-भारती' की रचना को इस प्रयास की एक कड़ी मानते हैं। 'मुसद्दस' तथा 'भारत-भारती' उनके लिए सिर्फ मुस्लिम तथा हिन्दू संस्कृतियों की आशाओं और आकांक्षाओं के केन्द्र नहीं रह जाते बल्कि संयुक्त उपक्रम में वे एक साझा भारतीय संस्कृति के निर्माण की भूमिका तैयार करते प्रतीत होते हैं। यह संस्कृति सिर्फ हिन्दुओं या मुसलमानों की संस्कृति नहीं है बल्कि एक सच्ची भारतीय संस्कृति है।

डॉ. रामविलास शर्मा 'दोआब' के दूसरे संस्करण की भूमिका में लिखते हैं "लेकिन हिन्दी-उर्दू के प्रगतिशील लेखकों में और बहुत से कम्युनिस्ट नेताओं में यह विचारधारा बहुत गहराई से जड़ जमाये हुए है कि देश में हिन्दुओं की एक संस्कृति है, मुसलमानों की दूसरी। यह विचारधारा काफी खुले रूप में सन् 47 के आस-पास प्रकट की जाती थी। शमशेर के निबन्धों पर इस विचारधारा का असर जहाँ-तहाँ दिखाई देते हैं। इसी भूमिका में एक जगह उन्होंने शमशेर के इकबाल' प्रेम को लक्ष्य करके लिखा है "हिन्दी के सभी कवियों के मुकाबले शमशेर को इक़बाल पसन्द हों, इस पर मुझे आपत्ति नहीं जब तक इक़बाल की उर्दू कविता को वह उसी जाति के साहित्य का अंग समझें जिसने हिन्दी साहित्य रचा है।"[5] डॉ. रामविलास शर्मा के आदर्श अपनी जगह और यह प्रश्न अपनी जगह की एक जातीयता का आग्रह, एक समान वेषभूषा, एक समान खानपान, एक समान बोली-बानी से होते हुए क्या एक समान धर्म और एक समान विचारधारा के अंध हिन्दू राष्ट्रवाद के दुराग्रह में नहीं पर्यवसित हो जाता है ? डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार "हिन्दू धर्म या इस्लाम का नाम लेने से या उनसे प्रभावित होने से किसी कवि की रचना जातीय संस्कृति से खारिज़ नहीं हो जाती।...........लेकिन इक़बाल ने धर्म के आधार पर देश के विभाजन की मांग की।...... इक़बाल ने राष्ट्रीय एकता की जमीन छोड़कर साम्प्रदायिक संकीर्णता का रास्ता अपनाया था।"[6] लेकिन शमशेर जी का मानना है कि "देश-प्रेम के लोकप्रिय तरानों का स्थान इकबाल की बाद की कविता में इस्लामी धर्म से अभिभावित एक व्यापक प्रकार के आदर्शवाद ने ले लिया जिसमें इस्लामी दुनिया का सांस्कृतिक और धार्मिक संगठन का भाव अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है। वास्तव में स्वदेश प्रेम से ऊपर

उठकर इक़बाल ने अपने धर्मानुयाइयों को जिस आदर्श की ओर प्रेरित किया है, उसे हम अनुदार कदापि नहीं कह सकते,........क्योंकि इक़बाल के 'मुस्लिम' की व्याख्या करने पर हम उसे संसार समाज का एक आदर्श व्यक्ति पाते हैं।"[7]

अंततः डॉ रामविलास शर्मा भी स्वीकार करते हैं कि "निबन्धों की यह पुस्तक उन थोड़ी-सी किताबों में है जिनमें हिन्दी-उर्दू साहित्य की सस्याओं पर एक जगह विचार किया गया है।"[8]

हिन्दी-उर्दू विवाद शमशेर के लिए कोई मायने नहीं रखता क्योंकि उनके अपने संस्कार उर्दू में रचे बसे हुये हैं। अपने इन संस्कारों के प्रति गहरी कृतज्ञता व्यक्त करते हुये वे कहते हैं "आज एक बात के लिये मैं अपने पँछोंही, सीधे-साधे जाट परिवार और अपने बचपन के युग को धन्यवाद देता हूँ कि किसी भाषा को लेकर कभी कोई दीवार मेरे चारों तरफ खड़ी न हो सकी। जो मेरे हृदय या मस्तिष्क को घेर लेती।"[9]

भाषा को लेकर यह सतर्कता उनमें हिन्दी-उर्दू विवाद के बढ़ने के साथ ही बढ़ती गयी है। वे भाषा को खुला आकाश देना चाहते हैं और इसी तरह अपनी अभिव्यक्ति को भी। वे उर्दू को हिन्दी का ही एक रूप मानते हैं। उर्दू और हिन्दी का यह मिलाजुला रूप उनकी अभिव्यक्ति को अधिक असरदार बनाता है। उनका मानना है कि "एक-दूसरे के वैभव से समृद्ध होने के अलावा और दूसरी एक चीज़ की हमारी व्यवहृत वाणी को आवश्यकता है, और वह है उस बुनियादी भाषा की, जिसकी खोज हमें गांव-गांव के शब्दों और महावरों में, कौम-कौम के रीति-रिवाजों के गीत-साहित्य में, और उनके जीवन के सुख-दुख, हास-रुदन के भाव सम्बल में करनी होगी।"[10]

भाषा लोगों द्वारा प्रयोग की जाती हैं। इसलिए कलाकार को इस जनभाषा की खोज ही करनी चाहिए। कृत्रिमता अभिव्यक्ति के लिए सबसे बड़ा खतरा है। "सादगी और पुरकारी" इसी जनभाषा की सिद्धि से ही प्राप्त हो सकती है। तभी हम अपने लोगों की भावनाओं, उनके सुखों-दुःखों को पहचान कर उनकी अभिव्यक्ति कर पायेंगे।

शमशेर हिन्दी और उर्दू के बीच बढ़ती दूरी को शुभ नहीं मानते और चिंतित होते हैं। यह विभाजन इतना भीषण है कि ये दोनों भाषायें लगभग दो धर्मों, संस्कृतियों की भाषाओं के रूप में पहचानी जाने लगी हैं। जबकि शमशेर जैसे संवेदनशील कवि का मानना है कि "आज एक उत्तरदायी कवि के समक्ष भारतीय संस्कृति केवल हिन्दू या मुसलमान संस्कृति नहीं हैं।"[11]

वे मानते हैं कि उर्दू असल में "हमारी हिन्दी का ही रूप है, कितना ही "अवैदिक" सही।"[12] इसीलिए शमशेर उर्दू को हमारी भाषाई समृद्धि का एक उपकरण मानते हैं। वे चाहते हैं कि लोग "यह देखें कि किस प्रकार वह योग प्राप्त हो जो हम अपने ही घर में गड़ा हुआ धन खोज और निकाल कर अपने काम में ला सकें? केवल शब्दों को रेल-मेल लेने से नहीं, कुछ अनोखे भावों का पैबन्द लगा लेने से नहीं, बल्कि दोनों प्रमुख संस्कृतियों के इतिहास, धर्म, कला और साहित्य के एक साथ अध्ययन की शुरु से ही अनिवार्य और व्यापक व्यवस्था करने से ही वह मौलिक सरसता, आधारभूत सौंदर्य की वह ग्रहण शक्ति पैदा हो सकती है जो कवि-कृतियों में इस युग को सफल बनायेगी।"[13]

शमशेर को भावों और संस्कारों का योग विरासत में मिला था। वह युगीन परिस्थितियों

की देन था। भाषाओं और व्यक्तियों के बीच की वह दूरियां तब नहीं थीं। शमशेर के उस पूरे व्यक्तित्व पर जिसे हम अक्सर 'शमशेरियत' के नाम से अभिहित करते हैं इस योग का अमिट असर है। फारसी और उर्दू के इस साहित्यिक संस्कार को हटाकर हम उनकी कविता को समझने में कभी सफल नहीं हो सकते। युवा कवि देवी प्रसाद मिश्र ने सही लिखा है कि "उनकी कविता सूफियाना नीम-होशी की कविता है।"[14] उनका यह भी मानना है कि "शमशेर उस तहजीब की बहुत विश्वसनीय नुमाइंदगी करते थे, जहां हिंदी और उर्दू भारतीय संस्कृति के दो विरोधी नहीं, संपूरक तत्व हैं।"[15] अपनी इन्हीं विशेषताओं के चलते शमशेर भारतीय नवजागरण के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे जब लिखते हैं–

मैं एक नज्म हू/एक दोहा हूँ।[16]

तो बात सिर्फ़ दो प्रकार के छन्दों की ही नहीं है। असल बात है उस रचाव-बसाव की जो दो संस्कृतियों ने सैकड़ों सालों में साथ रहकर अर्जित किया है। यह सांस्कृतिक रचाव-बसाव उनकी कविताओं में प्राण की तरह बसा हुआ है। वहीं भाषा और भाव की लय, वही प्रेम का सौंदर्य मूलक चित्रण, वही सूफियाना प्रेमोन्माद, शमशेर की कविताएं पढ़ते हुए हम जिस तन्मयता में डूब जाते हैं वह फारसी उर्दू ग़ज़ल परंपरा की देन लगती है। ग़ज़ल में "कवि एक ही भाव में दिमाग को नहीं उलझाता। रंग-रंग के भाव-चित्रों में प्रेम और सौंदर्य की बहार दिखाकर कवि अपनी सुरुचि और रस मर्मज्ञता का प्रमाण देते है। किसी विषय की व्याख्या करने का इसमें अवकाश नहीं। एक मार्मिक संकेत और बस, दूसरा मार्मिक संकेत और बस।"[17] शमशेर के इस वक्तव्य के साथ उनकी कविता का सौंदर्य देखिये–

ठंड भी एक मुस्कुराहट लिए हुए है

जो कि मेरी दोस्त है।

कबूतरों ने एक ग़ज़ल गुनगुनाई......

मैं समझ न सका, रदीफ़'काफ़िए क्या थे,

इतना ख़फ़ीफ़, इतना हलका, इतना मीठा

उनका दर्द था।

आसमान में गंगा की रेत आइने की तरह हिल रही है।

मैं उसी में कीचड़ की तरह सो रहा हूँ

और चमक रहा हूँ कहीं.....

न जाने कहाँ।[18]

डॉ. नामवर सिंह ने सही लक्ष्य किया है "उर्दू हिन्दी के इस 'दोआब' की कविताओं में 'आईना' अकसर आता है। हिन्दी के किसी कवि में 'आईना' की इतनी पूछ नहीं। शमशेर के काव्य लोक में घूमते हुए लगता है कि "आईना खाने में कोई लिए जाता है मुझे।" यह आईना हैरान होता नहीं, हैरान करता है। यह स्तेंधाल का "शहर में घूमता आईना" नहीं है, यह कवि की चमकती हुई तरल-तरल आँख की पुतली है जिसमें सारी कायनात बंद है।"[3]

शमशेर के इस 'आइने' में प्रतिबिंबित कायनात में–

सब संस्कृतियाँ मेरे सरगम में विभोर हैं-

क्योंकि मैं हृदय की सच्ची सुख-शांति का राग हूँ

बहुत आदिम, बहुत अभिनव[20]

यह आदिम और अभिनव राग ही इंसानियत का राग है। लेकिन उसे पाना इतना आसान कहाँ? बकौल गालिब 'आदमी को भी मुयस्सर नहीं इंसा होना? इसी इंसान की खोज शमशेर करते हैं। इसीलिए उनके 'आईने' में हमें अपनी शक्ल ज़्यादा विश्वसनीय ढंग से दिखाई पड़ती हैं। उनका 'आईना' सच्चा है। हिन्दी और उर्दू का दोआब तो वह है ही!

सन्दर्भ :

1. बाढ़ 1948, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 80
2. मुसद्दस और भारत भारती की सांस्कृतिक भूमिका, दोआब पृष्ठ 9
3. वही, पृष्ठ 25
4. अच्छे गद्य की पहचान, डॉ. रामविलास शर्मा, शमशेर पृष्ठ 61
5. वही, पृष्ठ 61
6. वही, पृष्ठ 61
7. इकबाल की कविता, दोआब पृष्ठ 131
8. अच्छे गद्य की पहचान, डॉ. शर्मा, शमशेर पृष्ठ 66
9. मैं हिन्दी में कैसे आया, कुछ और गद्य रचनाएं, पृष्ठ 100

10. उर्दू कविता, दोआब, पृष्ठ 110

11. वही, पृष्ठ 1110

12. वही पृष्ठ 111

13. वही,

14. मैं वह आईना हूँ जिसमें आप हैं, देवी प्रसाद मिश्र आजकल शमशेर अंक, पृष्ठ 49

15. वही, पृष्ठ 50

16. बाढ़ 1948, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 80

17. दोआब, पृष्ठ 115

18. टूटी हुई, बिखरी हुई, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 108

19. डॉ. नामवर सिंह, भूमिका, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 6

20. अमन का राग, प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ 92

परिशिष्ट – I

अजय सिंह से बातचीत

श्री अजय सिंह से बातचीत

28 दिसम्बर 1995 की सुबह। समय प्रायः 10 से 11 बजे की बीच। लखनऊ की पत्रकार कालोनी में श्री अजय सिंह का आवास। मैं उनसे कवि शमशेर के बारे में जानने गया था। अजय सिंह के परिवार में शमशेर जी काफी दिन रहे थे। अजय जी की पत्नी शोभा जी के परिवार से भी शमशेर जी का पारिवारिक नाता रहा। शोभा जी बहुत छोटी थी तभी से उन्होंने ताऊ जी (शमशेर जी) को देखा था। शमशेर जी के व्यक्तित्व की किन्हीं गहराइयों में उतरने की कुँजी शायद मिले इस स्वार्थ में मैं उन लोगों से बात करने गया था। शोभा जी से बात नहीं हो पाई। वे और उनकी बेटी भाषा दोनों ही किसी आवश्यक मीटिंग के लिए निकल ही रही थीं। अजय जी पकड़ में आ गए। उन्होंने शमशेर जी के बारे में विस्तार से बातें की।

अजय जी ने बताया कि शमशेर जी मुझे और शोभा को बेटी और दामाद की तरह मानते थे। परिचय भी इसी तरह कराते थे। शोभा को बेटी के तौर पर मानते थे। बहुत जुड़ाव और निकटता रही। मुझसे मिलने से पहले से ही उनका शोभा और उनके परिवार से सम्बन्ध था। शमशेर जी 1964-65 में दिल्ली गए थे। इलाहाबाद से। शमशेर से मेरा संपर्क 1969 में दिल्ली में हुआ। 1969 साल के आखिरी दिन। 1 जनवरी 1970 से हम लोग साथ रहने लगे लाजपत नगर में। जब मैं मिला था तब शमशेर डिफेंस कालोनी में रहते थे। वहाँ से शिफ्ट करने की तैयारी कर रहे थे। मैंने भी पैकिंग में हाथ बंटाया। 31 दिसम्बर 1969 को शिफ्ट किया था। 31 दिसम्बर 1969 को शिफ्ट किया था। 1 जनवरी 1970 से लेकर 1980-81 तक हमलोग बराबर साथ रहे। शुरू में दयानंद कालोनी लाजपत नगर और 1977 में हम लोग माडल टाउन

में शिफ्ट कर गए थे। 1980-81 में मैं लखनऊ अमृत प्रभात में चला आया। शोभा और बच्चे वहीं दिल्ली में थे। बाद में 1981 में शमशेर उज्जैन प्रेमचंद सृजनपीठ के आचार्य होकर चले गए। जब उज्जैन चले गए और बच्चे लखनऊ चले आए हम लोग बराबर उज्जैन जाते रहे। फिर जब वे गुजरात सुरेन्द्र नगर चले गए तो वहाँ भी हम सपरिवार जाते रहे। 80-81 के बाद परिवार के लोग नौकरी या कामकाज से बाहर चले जाते हैं उसी तरह का अलगाव था। लखनऊ शमशेर जी आते रहते थे। जून 1990 में हम लोग उनसे मिलने बड़ौदा गए थे। उसके बाद हम लोग जाने की सोचते रहे लेकिन जा नहीं पाए। आशंकाओं के बावजूद चाहने के बाद भी नहीं जा पाए। 1970-1980-81 तक एक ही छत के नीचे साथ-साथ और उसके बाद 1993 तक आना-जाना, चिट्ठी-पत्री, भावात्मक मेलजोल और मानसिक तौर पर सम्बन्ध बना रहा। हालांकि कभी मैं शमशेर के बारे में अपने परिचय जैसे वो मेरे ससुर हैं पसंद नहीं करता रहा। मैं भी उन्हें ताऊ जी कहता था। एक तरह की समझदारी थी हममें कि जब साहित्यिक-राजनैतिक बात होगी तो मैं उन्हें शमशेर जी कहता था। पारिवारिक वातावरण में ताऊ जी कहता था। हम लोगों का उनसे बहुत ही घनिष्ठ पारिवारिक और गहरा सम्बन्ध रहा। शोभा का परिचय इलाहाबाद से ही था। शोभा ने जब से होश संभाला होगा तब से वो शमशेर को देख रही होगी। शमशेर जी और शोभा का सम्बन्ध जो रहा उसी में मैं शरीक हो गया।

सहज और सरल व्यक्तित्व था उनका। निश्छल और निष्कपट व्यक्ति थे जिसमें कोई दुर्भावना या विद्वेष नहीं था। परिवार में हर चीज खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने में शमशेर जी की पूरी कोशिश रहती थी कि अपने से ज्यादा दूसरों को मिले। उनकी बराबर कोशिश रहती थी

कि उनके साथ शेयर करने वाले लोगों को ज्यादा मिले। गुस्सा तो उनको आता था। कभी मुझ पर, कभी शोभा पर, कभी बच्चों पर। नाराजगी में खामोशी हो जाती थी। तुनकमिजाज नहीं थे। लेकिन हर चीज में नफासत और सलीका हो, सुरूचि हो, तहजीब हो, गंवारूपन और अभद्रता न हो, बेशऊरी न हो यह तो उनका गुण था। चाहे अपना गुस्सा हो या प्रेम मंद कथन (Under Statement) उनका गुण था। यानि शब्दों या भाव भंगिमाओं के कम से कम इस्तेमाल के जरिए अपनी बात या अपने भाव व्यक्त करना उनकी सिफ़त थी। यह चीज़ उनकी कविता तथा व्यक्तित्व में झलकती है।

जब शमशेर जी दिल्ली चले गए तब वह परिस्थितियां नहीं रहीं जो जस्टफिट में थी। दिल्ली में मलयज का परिवार साथ में था। उसमें उस तरह की प्राइवेसी (Privacy) नहीं थी। 1964-65 में शुरू में शमशेर जी दिल्ली गए और मलयज के साथ रहने लगे। मुक्तिबोध की मृत्यु के समय प्रभाकर माचवे के साथ दिल्ली में रहे थे। 'चाँद का मुंह टेढ़ा है' संग्रह की भूमिका वहाँ ही लिखी थी। माडल टाउन में रहते हुए शमशेर जी का कमरा अलग था। चूंकि वे दिल्ली वि. वि. में हिन्दी-उर्दू प्रोजेक्ट पर काम भी कर रहे थे अतः वि. वि. आना-जाना होता ही था। परिवार के साथ रहते हुए भी उन्हें एकांत मिल जाता था। शमशेर जी अपनी रचना प्रक्रिया या कैसे वो लिखते या सोचते हैं इस बारे में बात करना पसंद नहीं करते थे। वे इस बारे में संकोची थे। लाजपतनगर में बरसाती थी जिसमें हम रहते थे। इससे ज़्यादा हम वहन नहीं कर सकते थे। एक-दो कमरे का घर था। किन्तु शमशेर जी का जो अपना रचना-संसार है वो चलता रहा। वहाँ तो उस तरह का एकांत नहीं था लेकिन उनमें यह सिफ़त था कि जब वो कुछ लिखने या सोचने

बैठ जाते थे तो तन्मय हो जाते थे। बाहर का कोलाहल उन्हें डिस्टर्ब (Disturb) नहीं करता था। भीतर के कोलाहल में गुम हो जाते थे। उस दौर में रहते हुए भी उन्होंने उर्दू पाठमाला 'दिनमान' में लिखी। (हिन्दी पाठकों को उर्दू सिखाने के लिए हर हफ्ते एक पाठ लिखते रहे। यह बहुत ही विलक्षण था और लगभग एक साल तक 'दिनमान' में चला और बहुत ही लोकप्रिय हुआ।) परिवार में रहते हुए उन्होंने यह लिखा। 1970 बाद के दशक में दंगों पर 'घर की पाती वसंता के नाम' वहीं लिखी गयी। उनकी अपनी जो रचना प्रक्रिया थी कई दिक्कतों के बावजूद रचना के लिए समय निकाल ही लेते थे और मेहनत और समय भी बराबर देते थे। 'शोभा के लिए' 'मोहन राकेश', 'बैल', 'अफ्रीका कम बैंक' कविताएं वहीं लिखी गईं। अपनी पुरानी रचनाओं को ढूंढकर छपने-छपाने के लिए तैयार करना वहीं किया। 1970 के बाद पुस्तकों के आने का क्रम बढ़ जाता है। रचना और प्रकाशन की दृष्टि से और अपने रचनाकार व्यक्तित्व को विकसित और अधिक प्रौढ़ रूप में प्रस्तुत करने का यही दौर है। काफी उर्वर दौर रहा है। इससे यह लगता है कि उनकी रचना प्रक्रिया इस जीवन के दूसरे दौर की जो भी जटिलताएं या अपेक्षाएं रहीं शमशेर ने उनको काफी हद तक पूरा किया है।

संवेदनशील थे, भावुक नहीं थे। रंजना ने जो शमशेर पर फिल्म बनायी थी उसकी समीक्षा जनमत में मैंने की थी। शमशेर को जो लोग अकेले अपने में लड़ता, टूटता और छीजता हुआ भावुक, असहाय इस तरह पेश करते हैं उनसे मैं सहमत नहीं हूँ। सहानुभूति, करूणा पैदा करने का लोगों का नजरिया रहा है, मैं समझता हूँ यह शमशेर का वस्तुपरक मूल्यांकन नहीं है, और न ही सही नजरिया है।शमशेर का अपना स्वतंत्र जीवन रहा है और जिसे उन्होंने सही

समझा और जैसा चाहा उस रूप में अपने जीवन को जिया और स्वतंत्र, आत्मनिर्भर, आत्मसम्मान से भरा हुआ परिपूर्ण जीवन जिया। शमशेर ने न किसी पर कभी दया की न उन्हें किसी की दया की दरकार रही। स्वतंत्रता, समानता और परस्पर सम्मान इन बिन्दुओं पर आधारित उनका जीवन रहा। परस्पर सम्बन्ध में भी चाहे निजी जीवन हो या साहित्यिक, सांस्कृतिक जीवन, इन्हीं मूल्यों को तरजीह देते रहे। परिवार या जीवन के बारे में जो पारंपरिक मूल्य रहे हैं शमशेर ने उन्हें भी स्वीकार नहीं किया। प्रेम, सहजीवन, परिवार इन सब के बारे में उनकी अवधारणा ही अलग थी। हालांकि इन सबको उन्होंने अलग से व्याख्यायित नहीं किया। पारंपरिक अर्थ में उनका कोई परिवार नहीं है। एक-दूसरे से रक्त सम्बन्ध ही उनके परिवार का आधार नहीं था। उन्होंने हमेशा नए-नए परिवार बनाए। चाहे इलाहाबाद हो चाहे दिल्ली में। इसलिए उन्हें जो लोग असहाय चित्रित करते हैं उनका पूरा नजरिया मार्क्सवादी या द्वन्द्ववादी पद्धति से अलग है और वस्तुपरक नहीं है। 'टूटी हुई बिखरी हुई' कविता में "तुम मुझसे प्रेम करो मछलियाँ जैसे लहरों से करती हैं जिनमें वह फंसने नहीं आती" या अन्य कविताओं में सम्बन्धों के बारे में जो उनका कांस्प्ट (Concept) विकसित होता है वह समानता, स्वतंत्रता और बराबरी का दृष्टिकोण है। एक-दूसरे के स्वतंत्र व्यक्तित्व पर निर्भर होके उन्होंने अपने सम्बन्ध बनाए थे। उनके जीवन और रचनाओं में यह दिखता है। परिवार या सम्बन्ध के बारे में उनकी अवधारणा ही दूसरी थी। पारंपरिक मूल्य या मान्यता की दृष्टि से जो उनके जीवन को देखते हैं उन्हें उनका जीवन खण्डहर की तरह दिखेगा। किन्तु उनका जीवन विविधतापूर्ण और अच्छा रहा है इसलिए उनसे मिलने वाले लोग समृद्ध हुए हैं। इतने सालों में उन्होंने अपने जीवन की निरूपायता, अकेलेपन की बात कभी नहीं की।

रविन्द्र ठाकुर, गालिब, मीर आदि उनके प्रिय कवि हैं। पाब्लो नेरूदा और ब्रेख्त के भी वो कायल हैं। हालांकि वो यह भी कहते रहे कि मेरा अध्ययन बहुत ज़्यादा नहीं है। यह उनकी विनम्रता है। शमशेर अपने रचनाकार के लिए जिनको मानते रहे हैं उनका उन्होंने गहरा अध्ययन किया है। शमशेर की विशेषता यह रही है कि डिकेडेन्स कवियों से भी अपने लिए काम की बात निकाल लेते थे, सीखते थे। सीखने के लिए बराबर आतुर रहते थे। चाहे नई भाषा हो या नया शिल्प हो। नौसिखिया कवियों को भी पूरी गंभीरता से राय देते थे। कोई व्यक्ति कवि है यही उनको आकृष्ट करता था। वे यह समझने की कोशिश करते थे कि किस बात ने इस व्यक्ति को कवि बनाया। जितने भी वाद चले कविता में, घनवाद (Cubism) या अन्य सब उन्हें आकृष्ट करते थे। यहाँ तक कि चित्रकारों के नए आंदोलनों पर भी उनकी दृष्टि रहती थी। 'अमन का राग' कविता है, दुनिया में जो भी समृद्ध और महान हैं वह हम सबका है उससे हमें जुड़ना चाहिए। संसार के महान कवि हैं और उनकी रचना प्रक्रिया को समझा जाय यही बात उनको आकृष्ट करती थी।

शमशेर का मूल्यांकन आलोचनात्मक नजरिए से होना चाहिए। व्यक्ति पूजा या स्तुतिगान न हो। वस्तुपरक मूल्यांकन हो।

भैरव प्रसाद गुप्त जी के साथ विवाद के बारे में उन्होंने कहा कि शमशेर जी समय को लेट होने पर ओवर टाइम करके कम्पेनसेट करते थे। अजय सिंह ने बताया कि दिल्ली वि. वि. में जब काम करते थे अक्सर रात 9 बजे के बाद लौटते थे। उनमें आत्म सम्मान और स्वाभिमान गजब का था। कही भी दैन्य नहीं था।

जब मैं शमशेर से मिला तब उनके महत्व के आकलन का दौर नए सिरे से चल रहा था। उस दौर में बहुत से प्रगतिशील कवियों पर चर्चा शुरू होती है। नागार्जुन, केदार आदि। नक्सलबाड़ी की घटना ने हिन्दी के साहित्यिक, सांस्कृतिक परिवेश पर गहरा असर डाला। यह प्रगतिशील कवियों के आकलन का नया दौर नक्सलबाड़ी के प्रभाव में होता है। उसी दौर में शमशेर से मेरा परिचय हुआ था। 1971 में जब शमशेर 60 वर्ष के हुए थे तब षष्ठपूर्ति मनायी गयी थी बड़े पैमाने पर। उसमें दिल्ली के जो भी कवि, लेखक, पत्रकार, संगीत, नृत्य की दुनिया से जुड़े लोग थे शामिल हुए थे। 1970 के बाद वाले दशक से उनके महत्व के आकलन का दौर शुरू होता है।

वे अपनी ताजी कविताओं को सुनाते थे। औपचारिक कवितापाठ के अलावा घरेलू वातावरण में कविता नहीं सुनाते थे। कभी प्रतिक्रिया नहीं मांगते थे। पंक्च्यूशन, स्पेस आदि पर काफी मशक्कत करते थे। बहुत Prolific writer नहीं थे। ताबड़तोड़ लिखने वाले। लेकिन जो जरूरी था उसे लिखते थे। दो-तीन घंटे में शमशेर जी ने मुझे उर्दू सिखा कर इस लायक बना दिया कि बच्चों के लिए प्रेमचंद की बालपोथी 'रामकथा' पढने लगा। उस रामकथा में राम के जन्म पर तोप छूटने का जिक्र है उसमें हम लोग हंसे थे। उर्दू की सरलता के बारे में बात करते थे।

परिशिष्ट – II

शोध प्रबन्ध में संदर्भित कुछ कविताएं और एक असंकलित कविता

परिशिष्ट : दो

शोध प्रबन्ध में संदर्भित कुछ कविताएं और एक असंकलित कविता

एक पीली शाम

एक पीली शाम

पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता शान्त

मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल

कृश म्लान हारा-सा

(कि मैं हूँ वह

मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं?)

वासना डूबी

शिथिल पल में

स्नेह काजल में

लिये अद्‌भुत रूप-कोमलता

अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू

सान्ध्य तारक-सा

अतल में।

एक नीला आइना बेठोस

एक नीला आइना
        बेठोस-सी यह चाँदनी
और अन्दर चल रहा हूँ मैं
        उसी के महातल के मौन में।
मौन में इतिहास का
        कन किरन जीवित, एक, बस।

एक पल के ओट में है कुल जहान।

आत्मा है
अखिल की हठ-सी।
        चाँदनी में घुल गये हैं
        बहुत-से तारे   बहुत कुछ
        घुल गया हूँ मैं
        बहुत कुछ अब।
                रह गया सा एक सीधा बिंब
                चल रहा है जो
                शान्त इंगित-सा
                न जाने किधर

सारनाथ की एक शाम

(त्रिलोचन के लिए)

ये आकाश के सरगम
खनिज रंग है
बहुमूल्य अतीत हैं
या शायद भविष्य।1।
तू किस
गहरे सागर के नीचे
के गहरे सागर
के नीचे का
गहरा सागर होकर
भिंच गया है
अथाह शिला से केवल
अनिंद्य अवर्ण्य मछलियों के विद्युत
तुझे खनते हैं
अपने सुख के लिए।2।
(सुख तो व्यंग्य में ही है
और कहाँ
युग दर्शन
- मित्र
छल का अपना ही
छन्द है
सर्वोपरि मधुर मुक्त
और कितना एब्स्ट्रैक्ट
क्योंकि व्यभिचार ही आधुनिकतम
काव्य कला है और आज
आलोचना के डाक्टर
उसे अनादि भी कहते हैं) ।3।

शब्द का परिष्कार
स्वयं दिशा है
वही मेरी आत्मा हो
आँधी दूर तक
तब भी
तू बहुत दूर है बहुत आगे
त्रिलोचन।4।

वह कोलाहल जो कोंपलों में भरा है
सुनकर
तू विक्षुब्ध हो-हो जाता
क्या उपनिषदों का शोर
उसे दबा पाता।5।

वरूणा के किनारे एक चक्रस्तूप है
शायद वहीं विश्व का केन्द्र है
वहीं कही
ऐसा सुनते हैं।6।

आधुनिकता आधुनिकता
डूब रही है महासागर में
किसी कोंपल के ओंठ पे
उभरी ओस के महासागर में
डूब रही है
तो फिर क्षुब्ध क्यों है तू।7।

x x x

तूने शताब्दियों
सानेट से मुक्त छन्द खन कर
संस्कृत वृत्तों में उन्हें बाँधा सहज हो लगभग
जैसे य' आकाश बँधे हुए हैं अपने
सरगम के अट्टहास में।8।

ओ
शक्ति के साधक अर्थ के साधक
तू धरती को दोनों ओर से
थामे हुए और
आँख मीचे हुए ऐसे ही सूँघ रहा है उसे
जाने कब से।9।

तुझे केवल मैं जानता हूँ।10।

क्योंकि
मैं उसी धरती में लोट रहा हूँ उसकी
ऋतुओं की पलकों-सा बिछा हुआ मैं
उसकी ऊष्मा में
सुलग रहा हूँ
शान्ति के लिए।11।

एक वासन्ती सोम झलक जो मेरे
अंक से छीन कर चाँद लुका लेता है
खींच ले जाती है प्राण मेरा
उस पर भी है तेरी दृष्टि। ।12।

आन्तरिक एकान्त
वरूणा किनारे की वह पद्म
ऊष्मा।13।

एक नीला दरिया बरस रहा

एक नीला दरिया बरस रहा है
और बहुत चौड़ी हवाएँ हैं
मकानात हैं मैदान
किस क़दर ऊबड़-खाबड़
मगर
एक दरिया
और हवाएँ
मेरे सीने में गूँज रही हैं।

एक रोमान
जो कहीं नहीं है मगर जो मैं
हूँ हूँ
एक गूँज ऊबड़-खाबड़
लगातार
आँख जो कि अँखुआ
आयी हो बहुत ही क़रीब बहुत
ही क़रीब।

(2)

एक सुतून
फिर हुआ खड़ा
वहीं
जहाँ कि वह शुरू से था खड़ा
एक जुनून
जो कि महज़ नाम था
फिर हुआ
जुनून
सब तुकें एक हैं
यानी कि मेरा
ख़ून।

अजब बेअदबी है ज़माने की– कि
कि
अक्स है इन्तिहाई गहरा
वही दरिया......
और वो मुझे ले गया डुबा
जहां इन्तिहाई गहराइयों के सिवा
और कुछ न था
एक इन्तिहाइयत...........हाइयत
जो कि महज़ महज़ महज़
मैं हूँ–और
कुछ नहीं
यहाँ।

(3)

मगर
मेरी पसली में हैं-गिन लो
व्यंजन : और उनके बीच में हैं
स्वर
उसे मेरा ही कहो–फ़िलहालः
(अहा, तुम कितने अच्छे हो कि मूर्ख हो-महात्मा मूर्ख
–इस ज़माने के स्वाँग में उतरे हुए
....एक आदिमतम देवता : स्थिरतम !)
नहीं नहीं नहीं
वह
स्वर :

एक ही हाथ : बायें आकाश को उठाये हुए है
एक गोल गति इक् करोड़ लाख बार घूम घूम
कर
मुझे लील जाती है
समूचा
अथाहों के दरिया में
अपने अक्स समेत

सच्च

वह स्वर।

(4)

तब मेरे लिए पहाड़ अरावली के

पुरातन-तम

खोद खोद डाले गये होंगे

सदैव के एक भविष्य में अभी से

नग्नतम बिबाइयाँ दरारें

धरती के सीने में अन्दर तक चली गयी हुई

घूम घूम कर

एक स्थिर चक्कर में

कविता की पंक्तियों की तरह-

अभी से।

(5)

हाँ मगर

वह

स्वऽ

र

एक फ़नल

धुँधुवाता

विशाल आकाश में

और वहीं

मैं

सीढ़ियों के-से

उलझे-पुलझे पथों से

चढ़ रहा हूँ उतर रहा हूँ चढ़ रहा.....

तर रहा.....

हूँ

और वहीं

एक

बड़ा नन्हा-सा

बड़ी गहराइयों वाला

अणु है अणु

नहीं मालूम ? अणु

गूँजता हुआ

एक व्यर्थ का अभ्युदय,

याकि

व्यर्थ का तुक --

क्षण का

निरन्तर --

एक बूँद लहू

और लो मेरा आविर्भाव

कि भवता

कि है-हो-था

अभी तक

वही मैं कोई

एक कविता।

(6)

एक विलयनवादी काव्य जो कि केवल

मैं लिखता------ लिख सकता------हमेशा नहीं----

वैसा काव्य। जैसा कि इनमें

ध्वनित-अध्वनित :

स्व

-

-

-

-इत्यादि।

समय के

चौराहों के चकित केन्द्रों से

उद्भूत होता है कोई : "उसे-व्यक्ति-कहो" :

कि यही काव्य है।

आत्मतम।

इसीलिए उसमें अपने को खो दिया

जाना गवारा करता हूँ

क्योंकि वहाँ मेरा एक महीन युग-भाव है
वहीं.....शायद मेरे लिए..... मात्र। शायद
मेरे ही अनेक बिंबों के लिए मात्र।
जिन्हें "मेरे पाठक कहा जाय" मात्र।

तो। इसमें और कुछ नहीं।
कोई संगीत नहीं। केवल प्रलाप।
केवल तम।
केवल प्रलाप। केवल मैं और आप। अनाप शनाप।
शराब
यानी इन्सानियत की तलछट का छोड़ा हुआ
स्वाद।
मुझे दो।
मगर पैमाना हो
फ़ोनिमिक्स
उन भाषाओं का, पश्चिम और पूर्व की, जो
मिलनसीमा को
आर्गनित
करती हैं,
बस
वहीं मेरा कवि :
तुम्हारा अन्यतम व्यक्ति।

नश्शा मुझे नहीं होता। नहीं होता।
मुझे पीने वालों को
होता
है - मेरी कविता को
अगर वो उठा सकें और एक घूँट
पी सकें
अगर।

इसलिए बस
मुझे वही शराब दो। बस।
(-मुझे नश्शा नहीं चाहिए।)

बात बोलेगी

बात बोलेगी,
हम नहीं।
भेद खोलेगी
बात ही।

. . सत्य का मुख
झूठ की आँखें
क्या -- देखें !

सत्य का रूख़
समय का रूख़ हैः
अभय जनता को
सत्य ही सुख है,
सत्य ही सुख।
दैन्य दानव ; काल
भीषण ; क्रूर
स्थिति ; कंगाल
बुद्धि ; घर मजूर।

सत्य का
क्या रंग ? --
पूछो
एक संग।
–एक– जनता का
दुःख एक।
हवा में उड़ती पताकाएँ
अनेक।

दैन्य दानव। क्रूर स्थिति।
कंगाल बुद्धि : मजूर घर-भर।
एक जनता का - अमर वर :
एकता का स्वर।
अन्यथा स्वातंत्र्य-इति।

ओ मेरे घर

ओ मेरे घर
ओ हे मेरी पृथ्वी
साँस के एवज़ तूने क्या दिया मुझे
 –ओ मेरी माँ?

तूने युद्ध ही मुझे दिया
 प्रेम ही मुझे दिया क्रूरतम कटुतम
और क्या दिया
 मुझे भगवान दिये कई–कई
 मुझसे भी निरीह मुझसे भी निरीह!
और अद्‌भुत शक्तिशाली मकानीकी प्रतिमाएँ!

ऐसी मुझे ज़िन्दगी दी
ओह
आँखे दीं जो गीली मिट्टी का बुदबुद-सी हैं
और तारे दिये मुझे अनगिनती
 साँसों की तरह
 अनगिनती इकाइयों में
 मुझसे लगातार दूर जाते
मौत की व्यर्थ प्रतीक्षाओं–से!
और दी मुझे एक लम्बे नाटक की
हँसी
फैली हुई
दर्शकशाला के इस छोर से उस छोर तक
 लहराती कटु–क्रूर।

फिर मुझे जागना दिया, यह कहकर कि
लो और सोओ!

और वही तलवारें अँधेरे की
अन्तिम लोरियों के बजाय!

इन्सान के अँखौटे में डालकर मुझे
सब कुछ तो दे दिया :
जब मुझे मेरे कवि का बीज दिया कटु-तिक्त।

फिर एक ही जन्म में और क्या-क्या
चाहिए!

राग

मैंने शाम से पूछा-

या शाम ने मुझसे पूछा :

इन बातों का मतलब ?

मैंने कहा-

शाम ने मुझसे कहा :

राग अपना है।

2

आँखे मुँद गयीं।

सरलता का आकाश था

जैसे त्रिलोचन की रचनाएँ।

नींद ही इच्छाएँ।

3

मैंने उससे पूछा-

उसने मुझसे :

कब ?

मैंने कहा-

उसने मुझसे कहा :

समय अपना राग है।

4

तुमने 'धरती' का पद्य पढ़ा है?

उसकी सहजता प्राण है।

तुमने अपनी यादों की पुस्तक खोली है?

जब यादें मिटती हुईं एकाएक स्पष्ट हो गयी हों?

जब आँसू छलक न जाकर

आकाश का फूल बन गया हो?

-वह मेरी कविताओं-सा मुझे लगेगाः

तब तुम मुझे क्या कहोगे?

5

उसने मुझसे पूछा, तुम्हारी कविताओं का क्या मतलब है?
मैंने कहा-कुछ नहीं।
उसने पूछा-फिर तुम इन्हें क्यों लिखते हो?
मैंने कहा-ये लिख जाती हैं। तब
इनकी रक्षा कैसे हो जाती है?
उसने क्यों यह प्रश्न किया?
मैंने पूछा :
मेरी रक्षा कहाँ होती है? मेरी साँस तो-
तुम्हारी कविताएँ हैं: उसने कहा पर-
इन साँसों की रक्षा कैसे होती आई?
वे साँसों में बँध गये; शायद ऐसे ही रक्षा
होती आई। फिर बहुत से-गीत
खो गये।

6

वह अनायास मेरा पद गुनगुनाता हुआ बैठा
रहा, और मैंने उसकी ओर
देखा, और मैं समझ गया।
और यह संग्रह उसी के हाथों में खो गया।

7

उसने मुझसे पूछा, इन शब्दों का क्या
मतलब है? मैंने कहा : शब्द
कहाँ हैं? वह मौन मेरी ओर
देखता चुप रहा। फिर मैंने
श्रम-पूर्वक बोलते हुए कहा-कि :
शाम हो गयी है। उसने मेरी
आँखों में देखा, और फिर-एकटक देखता
ही रहा। क्यों फिर उसने मेरा संग्रह
अपनी धुँधली गोद में खोला और
मुझसे कुछ भी पूछना भूल गया।

मुझको भी नहीं मालूम, कौन था
वह। केवल यह मुझे याद है।

8

तब छंदों के तार खिंचे-खिंचे थे,
राग बँधा-बँधा था,
प्यास उँगलियों में विकल थी-
कि मेघ गरजे;
और मोर दूर और कई दिशाओं से
बोलने लगे-पीयूअ् ! पीयूअ् ! उनकी
हीरे-नीलम की गर्दनें बिजलियों की तरह
हरियाली के आगे चमक रही थीं।
कहीं छिपा हुआ बहता पानी
बोल रहा था : अपने स्पष्ट मधुर
प्रवाहित बोल।

वह सलोना जिस्म

शाम का बहता हुआ दरिया कहाँ ठहरा!
साँवली पलकें नशीली नींद में जैसे झुकें
चाँदनी से भरी भारी बदलियाँ हैं,
ख़ाब में गीत पेंग लेते हैं
प्रेम की गुइयाँ झुलाती हैं उन्हें :
-उस तरह का गीत, वैसी, नींद, वैसी शाम-सा है
वह सलोना जिस्म।

उसकी अधखुली अँगड़ाइयाँ हैं
कमल के लिपटे हुए दल
कसे भीनी गंध में बेहोश भौंरे को

वह सुबह की चोट है हर पंखुड़ी पर।

रात की तारों-भरी शबनम
कहाँ डूबी है !

नर्म कलियों के
पर झटकते हैं हवा की ठंड को।

तितलियाँ गोया चमन की फ़िज़ा में नश्तर लगाती हैं।
-एक पल है यह समाँ
जागे हुए उस जिस्म का !
जहाँ शामें डूब कर फिर सुबह बनती हैं
एक-एक,-
और दरिया राग बनते हैं–कमल
फ़ानूस-रातें मोतियों की डाल-
दिन में
साड़ियों के-से नमूने चमन में उड़ते छबीलेः वहाँ

गुनगुनाता भी सजीला जिस्म वह–
जागता भी
मौन सोता भी, न जाने
एक दुनिया की
उमीद-सा,
किस तरह!

लौट आ ओ धार

लौट आ ओ धार

टूट मत ओ साँझ के पत्थर
हृदय पर

(मैं समय की एक लम्बी आह
मौन लम्बी आह)

लौट आ, ओ फूल की पंखड़ी
फिर
फूल में लग जा

चूमता है धूल का फूल
कोई, हाय।

टूटी हुई, बिखरी हुई

टूटी हुई बिखरी हुई चाय
की दली हुई पाँव के नीचे
पत्तियाँ
मेरी कविता
बाल, झड़े हुए, मैले से रूखे, गिरे हुए, गर्दन से फिर भी
चिपके
...कुछ ऐसी मेरी खाल,
मुझसे अलग-सी, मिट्टी में
मिली-सी

दोपहर बाद की धूप-छाँह में खड़ी इन्तज़ार की ठेलेगाड़ियाँ
जैसे मेरी पसलियाँ.....
खाली बोरे सूजों से रफ़ू किये जा रहे हैं..... जो
मेरी आँखों का सूनापन हैं।

ठंड भी एक मुसकराहट लिये हुए है
जो कि मेरी दोस्त है।

कबूतरों ने एक ग़ज़ल गुनगुनायी...
मैं समझ न सका, रदीफ़-क़ाफ़िये क्या थे,
इतना ख़फ़ीफ़, इतना हलका, इतना मीठा
उनका दर्द था।

आसमान में गंगा की रेत आईने की तरह हिल रही है।
मैं उसी में कीचड़ की तरह सो रहा हूँ
और चमक रहा हूँ कहीं....
न जाने कहाँ।

मेरी बाँसुरी है एक नाव की पतवार–
जिसके स्वर गीले हो गये हैं,

छप् छप् छप् मेरा हृदय कर रहा है...
छप् छप् छप्।

वह पैदा हुआ है जो मेरी मृत्यु को सँवारने वाला है।
वह दूकान मैंने खोली है जहाँ 'प्वाइजन' का लेबुल लिए हुए
दवाइयाँ हँसती हैं–
उनके इंजेक्शन की चिकोटियों में बड़ा प्रेम है।

वह मुझ पर हँस रही है, जो मेरे होठों पर एक तलुए
के बल खड़ी है
मगर उसके बाल मेरी पीठ के नीचे दबे हुए हैं
और मेरी पीठ को समय के बारीक तारों की तरह
खुरच रहे हैं
उसके एक चुम्बन की स्पष्ट परछायीं मुहर बनकर उसके
तलुओं के ठप्पे से मेरे मुँह को कुचल चुकी है
उसका सीना मुझको पीसकर बराबर कर चुका है।

मुझको प्यास के पहाड़ों पर लिटा दो जहाँ मैं
एक झरने की तरह तड़प रहा हूँ।
मुझको सूरज की किरनों में जलने दो
ताकि उसकी आँच और लपट में तुम
फ़ौवारे की तरह नाचो।
मुझको जंगली फूलों की तरह ओस से टपकने दो
ताकि उसकी दबी हुई ख़ुशबू से अपने पलकों की
उनींदी जलन को तुम भिंगो सको, मुमकिन है तो।
हाँ, तुम मुझसे बोलो, जैसे मेरे दरवाज़े की शर्माती चूलें
सवाल करती हैं बार-बार....मेरे दिल के
अनगिनती कमरों से

हाँ, तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मछलियाँ लहरों से करती हैं
...जिनमें वह फँसने नहीं आतीं,
जैसे हवाएँ मेरे सीने से करती हैं
जिसको वह गहराई तक दबा नहीं पातीं,

तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मैं तुमसे करता हूँ।

आईनों, रोशनाई में घुल जाओ और आसमान में
मुझे लिखो और मुझे पढ़ो।
आईनो, मुसकराओ और मुझे मार डालो।
आईनो, मैं तुम्हारी ज़िन्दगी हूँ।

एक फूल ऊषा की खिलखिलाहट पहनकर
रात का गड़ता हुआ काला कम्बल उतारता हुआ
मुझसे लिपट गया

उसमें काँटे नहीं थे-सिर्फ़ एक बहुत
काली, बहुत लम्बी ज़ुल्फ़ थी जो ज़मीन तक
साया किये हुए थी... जहाँ मेरे पाँव
खो गये थे।

वह गुल मोतियों को चबाता हुआ सितारों को
अपनी कनखियों में घुलाता हुआ, मुझपर
एक ज़िन्दा इत्रपाश बनकर बरस पड़ा-
और तब मैंने देखा कि सिर्फ़ एक साँस हूँ जो उसकी
बूँदों में बस गयी है।
जो तुम्हारे सीनों में फाँस की तरह ख़ाब में
अटकती होगी, बुरी तरह खटकती होगी।

मैं उसके पाँवों पर कोई सिजदा न बन सका,
क्योंकि मेरे झुकते न झुकते
उसके पाँवों की दिशा मेरी आँखों को लेकर
खो गयी थी।

जब तुम मुझे मिले, एक खुला फटा हुआ लिफ़ाफ़ा
तुम्हारे हाथ आया।
बहुत उसे उलटा-पलटा-उसमें कुछ न था-

तुमने उसे फेंक दिया : तभी जाकर मैं नीचे
पड़ा हुआ तुम्हें 'मैं' लगा। तुम उसे
उठाने के लिए झुके भी, पर फिर कुछ सोचकर
मुझे वहीं छोड़ दिया। मैं तुमसे
यों ही मिल लिया था।

मेरी याददाश्त को तुमने गुनाहगार बनाया-और उसका
सूद बहुत बढ़ाकर मुझसे वसूल किया। और तब
मैंने कहा-अगले जनम में। मैं इस
तरह मुसकराया जैसे शाम के पानी में
डूबते पहाड़ ग़मगीन मुसकराते हैं।

मेरी कविता की तुमने खूब दाद दी-मैंने समझा
तुम अपनी ही बातें सुना रहे हो। तुमने मेरी
कविता की ख़ूब दाद दी।

तुमने मुझे जिस रंग में लपेटा, मैं लिपटता गया :
और जब लपेट न खुले-तुमने मुझे जला दिया।
मुझे, जलते हुए को भी तुम देखते रहे : और वह
मुझे अच्छा लगता रहा।

एक ख़ुशबू जो मेरी पलकों में इशारों की तरह
बस गयी है, जैसे तुम्हारे नाम की नन्हीं-सी
स्पेलिंग हो, छोटी-सी प्यारी-सी, तिरछी स्पेलिंग।

आह, तुम्हारे दाँतों से जो दूब के तिनके की नोक
उस पिकनिक में चिपकी रह गयी थी,
आज तक मेरी नींद में गड़ती है।
अगर मुझे किसी से ईर्ष्या होती तो मैं
दूसरा जन्म बार-बार हर घंटे लेता जाता:
पर मैं तो जैसे इसी शरीर से अमर हूँ
तुम्हारी बरकत !

बहुत-से तीर बहुत सी नावें, बहुत से पर इधर
उड़ते हुए आये, घूमते हुए गुज़र गये
मुझको लिये, सबके सब। तुमने समझा
कि उनमें तुम थे। नहीं, नहीं, नहीं।
उनमें कोई न था। सिर्फ़ बीती हुई
अनहोनी और होनी की उदास
रंगीनियाँ थी । फ़क़त ।

एक मुद्रा से

(गीत)

-सुन्दर!
उठाओ
निज वक्ष
और-कस-उभर!

क्यारी
भरी गेंदा की
स्वर्णारक्त
क्यारी भरी गेंदा की :
तन पर
खिली सारी-
अति सुन्दर! उठाओ0।
स्वप्न-जड़ित-मुद्रामयि
शिथिल करूण!
हरो मोह-ताप, समुद
स्मर-उर वर :
हरो मोह-ताप-
और और कस उभर!
सुन्दर! उठाओ0!
अंकित कर विकल हृदय-पंकज के अंकुर पर
चरण-चिह्न,
अंकित कर अंतर आरक्त स्नेह से नव, कर पुष्ट, बढ़ूँ
सत्वर, चिरयौवन वर, सुन्दर!-

उठाओ निज वक्ष : और और कस, उभर !

सूर्य के सिवा

(विन्ध्याचल के पार कभी क्या
झील-ताल के शीत कुहर से
मुँह निकालते सूरज को देखा है?
याद मुझे वह छिदरे घन का दृश्य
अभी तक। वह-)
मैले चूने सी पथरीली शाखें
या ताज़े पत्ते कत्थे के से हरे :
वह काली मछली सी पपड़ीली डालें,
वह कड़े-कटे पत्ते जो कीड़ों भरे;
पानी से धुल,
मिट्टी से भर,
धूप से चमक
जानवरों के कपाल-पन्जर पड़े;
वह काले श्रापित पत्थर उबड़-खाबड़
जो कठिन कँटीले झंखाड़ों में खड़े;
वह मकड़ी के जालों की धुंधली माया
तृण, पल्लव, शाखा, प्रस्तर, अस्थि लपेटेः
-उनमें जो कोमल तुहिन-कणों की झिल-मिल
सूर्य के सिवा उनका सुख कौन समेटे

टिप्पणी : यह कविता राजा दूबे और अशोक वाजपेयी द्वारा संपादित त्रैमासिक 'समवेत' के प्रवेशांक में प्रकाशित हुई थी। इसे शमशेर जी ने फिर किसी संकलन में शामिल नहीं किया।

परिशिष्ट – III

जीवन वृत्त और साहित्य

शमशेर बहादुर सिंह
जीवन वृत्त और साहित्य

परिवार

नाम : शमशेर बहादुर सिंह

जन्म नाम : कुलदीप सिंह

पिता का नाम एवं व्यवसाय : बाबू तारीफ सिंह। वे क्रमशः गोंडा, देहरादून, सहारनपुर आदि स्थानों पर कलेक्ट्रेट में अहलमद के पद पर रहे।

माता का नाम : श्रीमती प्रभुदेई

पत्नी का नाम : श्रीमती धर्मदेवी

जीवनवृत्त

- 1911 में 3 जनवरी को देहरादून में जन्म।
- 1919 में 8 वर्ष की आयु में माँ की मृत्यु।
- 1928 में हाई स्कूल की शिक्षा गोण्डा से प्राप्त की। प्रारंभिक एवं माध्यमिक शिक्षा देहरादून में।
- 1929 में धर्मदेवी जी से विवाह
- 1931 में गोंडा से इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण की। इलाहाबाद आये
- 1933 में इलाहाबाद डिग्री कॉलेज से बी. ए. किया।
- 1934 में बी. ए. (आनर्स) में अंग्रेजी विषय के साथ दाखिला लिया, किन्तु पढ़ाई न कर सके।
- 1935 में पत्नी श्रीमती धर्मदेवी की क्षयरोग से मृत्यु। इसी वर्ष शमशेर जी दिल्ली आ गए और दिल्ली के उकील बंधुओं से लगभग एक वर्ष तक पेंटिग सीखते रहे।
- 1936 में दिल्ली छोड़कर वापस देहरादून। उकील बंधुओं के कला विद्यालय की स्थानीय शाखा में कला का प्रशिक्षण साथ ही अपने ससुर की केमिस्ट की दुकान पर कम्पाउंडरी।
- 1937 में श्री हरिवंश राय बच्चन की प्रेरणा से पुनः इलाहाबाद वापसी। यहीं बच्चन एवं सुमित्रानंदन पंत की प्रेरणा से एम. ए. (अंग्रेजी) प्रीवियस में दाखिला।
- 1938 में एम. ए. पूर्वार्द्ध परीक्षा उत्तीर्ण। किन्तु फाइनल न कर सके।
- 1939 में पिता श्री तारीफ सिंह की मृत्यु। धर्मदेवी की मृत्यु के पश्चात् चौथे ही वर्ष एक और आघात। 28 वर्ष की उम्र में यह तीसरी मृत्यु थी। इसी वर्ष 'रूपाभ' में कार्यालय सहायक।
- 1940 में बनारस से प्रकाशित होने वाली 'कहानी' मासिक में त्रिलोचन के साथ सम्पादन सहयोग।
- 1942 में मामा बाबू लक्ष्मीचंद के पास जबलपुर आगमन। यहाँ रहते हुए शमशेर जी कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े और पार्टी की गतिविधियों में सक्रिय हिस्सेदारी निभाई। इसी वर्ष 25 मई को सरस्वती प्रेस बनारस से 'दोआब' का प्रकाशन।
- 1944 में कैंसर ग्रस्त ससुर के इलाज के लिए बंबई आगमन। बंबई प्रवास के दौरान इप्टा से परिचय।
- 1945 में दुबारा बंबई पहुंचे। पार्टी कम्यून में रहे। यहाँ पर श्री कैफी आजमी एवं श्री पूर्ण चंद जोशी के संपर्क में आये। पार्टी कम्यून में रहते हुए ही 'नया साहित्य' का संपादन किया।
- 1946 में 'नया साहित्य' का निराला अंक प्रकाशित।

- 1947 में पुनः इलाहाबाद वापस।
- 1948 में 'माया' में सहायक संपादक की नौकरी।
- 1952 में दूसरा सप्तक का प्रकाशन। सात कवियों में से एक।
- 1953 में बहादुरगंज में जस्टफिट टेलर वाले मकान में निवास। यहाँ शमशेर जी लंबी अवधि तक रहे।
- 1954 में माया प्रेस से त्यागपत्र दे दिया। माया के अलावा उन्होंने कुछ समय तक 'नयापथ' एवं 'मनोहर कहानियाँ' में भी सम्पादन-सहयोग किया।
- 1959 में 'कुछ कविताएं' जगत शंखधर द्वारा डी 53/96 कमच्छा वाराणसी से प्रकाशित।
- 1961 में राजकमल प्रकाशन दिल्ली से 'कुछ और कविताएं' का प्रकाशन।
- 1962 की गर्मियों में कुछ दिनों के लिए सारनाथ में निवास। यहीं पर एलेन गिन्सबर्ग से परिचय।
- 1963-64 में प्रयाग और दिल्ली के बीच थोड़ा-थोड़ा समय बिताया।
- 1965 में दिल्ली विश्वविद्यालय में यू.जी.सी. के प्रोजेक्ट 'उर्दू-हिन्दी कोश' योजना में हिन्दी संपादक।
- 1975 में राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से 'चुका भी हूँ नहीं मैं' के पहले संस्करण का प्रकाशन।
- 1977 में 'चुका भी हूँ नहीं मैं' पर मध्य प्रदेश साहित्य परिषद का तुलसी पुरस्कार। इसी संग्रह पर साहित्य अकादमी दिल्ली का पुरस्कार। इसी वर्ष शमशेर जी यू.जी.सी. के प्रोजेक्ट 'उर्दू-हिन्दी कोश' के हिन्दी संपादक पद से सेवानिवृत्त
- 1978 में सोवियत संघ की यात्रा।
- 1980 में 'उदिता-अभिव्यक्ति का संघर्ष' का वाणी प्रकाशन दिल्ली द्वारा प्रकाशन। प्रारंभिक कविताओं का संकलन। 1980 में इतने पास अपने' का भी प्रकाशन राजकमल प्रकाशन से।
- 1981 में संभावना प्रकाशन हापुड़ द्वारा 'बात बोलेगी' का प्रकाशन। 'चुका भी हूँ नहीं मैं' का दूसरा संस्करण राधाकृष्ण प्रकाशन से।
- 1981 में ही मध्य प्रदेश कला परिषद के अंतर्गत स्थापित प्रेमचंद सृजन-पीठ उज्जैन के अध्यक्ष नियुक्त।
- 1985 में प्रेमचंद सृजनपीठ के अध्यक्ष पद से हटे।
- 1985 में ही सुरेन्द्र नगर (गुजरात) आगमन। अस्वस्थ। अहमदाबाद में थोड़े समय तक इलाज। पुनः डा. रंजना अरगड़े के साथ सुरेन्द्र नगर वापसी।
- 1987 में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा मैथिली शरण गुप्त पुरस्कार' से सम्मानित।
- 1988 में 'काल तुझसे होड़ है मेरी' का प्रकाशन। इसी वर्ष 'कुछ गद्य रचनाएं' का भी प्रकाशन।
- 1989 में 'कुछ और गद्य रचनाएं' प्रकाशित। कबीर सम्मान।
- 1992 में नवम्बर से जनवरी 1993 तक वल्लभ विद्यानगर गुजरात में डा रंजना अरगड़े के साथ निवास।
- 1993 में फरवरी में पुनः अहमदाबाद। लगातार अस्वस्थ।
- 12 मई 1993 को अहमदाबाद में देहावसान।

शमशेर की रचनाएं

काव्य :

1. कुछ कविताएं चयनकर्ता और प्रकाशक, जगत शंखधर, वाराणसी, डी 53/96 कमच्छा, वाराणसी, मई 1959
2. कुछ और कविताएं : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1961
3. चुका भी हूँ नहीं मैं : राधा कृष्ण प्रकाशन दिल्ली 1975
4. इतने पास अपने : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1980
5. उदिता-अभिव्यक्ति का संघर्ष : वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1980
6. बात बोलेगी : संभावना प्रकाशन, हापुड़ 1981
7. काल तुझसे होड़ है मेरी : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1990
8. कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ : राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1995
9. सुकून की तलाश (मरणोपरान्त) : वाणी प्रकाशन दिल्ली 1998

गद्य :

1. कुछ गद्य रचनाएँ : (दोआब, सरस्वती प्रेस, बनारस, 1942 और 'प्लाटका मोर्चा, न्यू लिटरेचर, इलाहाबाद, 1951, शामिल), संभावना प्रकाशन हापुड़, 1989।
2. कुछ और गद्य रचनाएं : राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1992।

चयन :

1. दूसरा सप्तक : भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1955
2. प्रतिनिधि कविताएं : संपादक डा. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1990
3. टूटी हुई बिखरी हुई : संपादक अशोक वाजपेयी, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली द्वारा 'वागर्थ' भारत भवन भोपाल के सहयोग से प्रकाशित 1990।

अनुवाद :

(उर्दू से)

1. कामिनी
2. हुश्शू
3. पी कहाँ : तीनों सरशार के उर्दू उपन्यास : प्रकाशक : सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद 1948
4. उर्दू साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : प्रो. एज़ाज हुसैन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1957

(अंग्रेजी से)

5. षड्यंत्र : साएर और काहन, (सोवियत विरोधी गतिविधियों का इतिहास) पी. पी. एच., 1946 (रूसी के अंग्रेजी अनुवाद से)
6. पृथ्वी और आकाश : उपन्यास, लेखक वान्दा वासिलवास्का। सरस्वती प्रेस, बनारस, 1944.
7. आश्चर्य लोक में एलिस, लुई कैरोल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1961

संदर्भ सूची

(1) कविता के नए प्रतिमान, डा. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

(2) नयी कविता और अस्तित्ववाद- डा. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

(3) भाषा, युगबोध और कविता, डॉ. रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

(4) शमशेर बहादुर सिंह, प्रभाकर श्रोत्रिय, साहित्य अकादमी दिल्ली

(5) हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल, वाराणसी

(6) शमशेर बहादुर सिंह, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली

(7) चयन, निराला, राजकमल प्रकाशन दिल्ली

(8) कवियों का कवि शमशेर, रंजना अरगड़े, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

(9) संकल्प का सौन्दर्यशास्त्र, मन्नू भंडारी, अजित कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

(10) वर्धमान और पतनशील, विजयदेव नारायण साही, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

(11) नयी कविता, डॉ. देवराज, वाणी प्रकाशन दिल्ली

(12) साहित्य विधाओं की प्रकृति, देवी शंकर अवस्थी, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, दिल्ली

(13) पत्रः युवा कवि के नाम, राइनेर मारिया रिल्के, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

(14) शमशेर की कविता, नरेन्द्र वशिष्ठ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

(15) आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डा. नामवर सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

(16) आधुनिक हिन्दी समीक्षा, निर्मला जैन, प्रेमशंकर, साहित्य अकादमी, दिल्ली

(17) कला अनुभव, हिरियन्ना, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

(18) Literary Theory, Jonathan Culler, OXFORD, New Delhi.

(19) Ilusion and Reality, C. Caudwell, P. P. H. New Delhi.

(20) Dioctionary of Philosophy, Progress Publishers. Moscow.

(21) Form Baudelaire to surrealism, M. Raymond, Peter owen Limited, London.

(22) On Literature, Maxim Gorky, Progress Publishers Moscow.

(23) The Modern Tradition, By R. Ellmann and Charles Feidelson, Jr;, OXFORD Press, New York.

(24) The Principles of Art, R. G. Collingwood, OXFORD Press New York.

पत्रिकाएं

पूर्वग्रह, आलोचना, विपाशा, साक्षात्कार, कल के लिए, सापेक्ष, अंर्तदृष्टि आजकल आदि।